उड़ानें

लेखक
कृष्ण चन्द्र

नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्ज़
दरीबा कलाँ दिल्ली

उड़ानें

यह पुस्तक

शिक्षा-विभाग बिहार राज्य से पत्र-सं० ७७५ दिनांक ६-२-५६ के अनुसार स्वीकृत है। इसके अतिरिक्त सैन्ट्रल लायब्रेरी कमेटी पंजाब से विकास तथा समाज-शिक्षा केन्द्रों, ग्राम पंचायतों और लायब्रेरियों के लिये स्वीकृत है।

उड़ानें

सम्पादक

कृष्ण चन्द्र

प्रकाशक

एन० डी० सहगल एण्ड सन्ज़

दिल्ली

प्रकाशकीय

हिन्दी में उर्दू कहानीकारों की कहानियाँ तो आये दिन प्रकाशित होती रहती हैं, किन्तु उर्दू कथा-साहित्य के प्रतिनिधि संग्रह नगण्य हैं।

'उड़ानें' इस दिशा में प्रथम प्रयास है और यदि इसका यथेष्ट स्वागत हुआ तो हम इसी सिलसिले की अन्य कड़ियाँ भी प्रस्तुत करेंगे।

प्रस्तुत संग्रह में उर्दू के लब्ध-प्रतिष्ठ कहानी-लेखकों की सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ सम्मिलित हैं जो हिन्दी पाठकों को उर्दू कथा-साहित्य की विविध शैलियों तथा विभिन्न प्रवृत्तियों से परिचित करायेंगी और उर्दू-साहित्य की ओर उन्हें आकृष्ट करेंगी।

प्रस्तुत संग्रह का सम्पादन उर्दू तथा हिन्दी के सुविख्यात कहानीकार श्री कृष्ण चन्द्र ने किया है और उन्होंने वैसी ही कहानियों का संचय किया है जो उर्दू की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ मानी जाती हैं।

उ ड़ा नें

प्राक्कथन

'उड़ानें' वास्तव में उर्दू के सर्वश्रेष्ठ कहानी-लेखकों की सर्वश्रेष्ठ कहानियों की उड़ानें, उनकी कल्पना की उड़ानें, उनके अनुभवों की उड़ानें, प्रेक्षण और टेकनीक की उड़ानें हैं। कहानी में केवल जीवन ही नहीं होता, केवल प्रेक्षण ही नहीं होता, केवल कल्पना ही नहीं होती अपितु वह एक दिशा-विशेष की ओर भी अग्रसर होती है—अर्थात् इनसान को किधर जाना है और क्यों ? यानी कहानी केवल कल्पना, केवल जीवन या इन दोनों का मिश्रण-मात्र नहीं होती। वह तो जीवन की दिशा, उसकी कड़ी आलोचना तथा उसके भविष्य का मार्ग भी निर्धारित करती है। कहानीकार, किसी भी भाषा का कहानीकार हो, समाज का एक ज़िम्मेदार और जागरूक व्यक्ति होता है जो अपनी कहानियों द्वारा अपने पाठकों के हृदय में उल्लास उत्पन्न करते हुए भी उनके हृदय में उत्कृष्ट सामाजिक, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक प्रवृत्तियों के विकास में भी सहायक सिद्ध होता है। वह अपनी कहानी के ज़रिये बहुत से काम करता है। वह अपने पाठकों के सामने ज़िंदगी को एक ऐसे दृष्टिकोण से प्रस्तुत करता है, जिस दृष्टिकोण से वे चौकन्ने होकर कहानीकार के साथ-साथ इस ज़िंदगी को देखने लगते हैं। यह जीवन उन्हें बिलकुल अपना किन्तु साथ ही अपने से अलग-थलग भी मालूम होता है। वे अनुभव करने लगते हैं जैसे इस प्रकार उन्होंने अपने जीवन का प्रेक्षण न किया था, इस प्रकार तो उन्होंने सम्पूर्ण जीवन को न देखा था, उनकी उड़ने की शक्ति कल्पना की सहायता से यहाँ तक तो न गई थी, किन्तु अब गई है। यानी कथाकार अपने पाठकों को तिलस्म के जाल में बाँध कर उसे जीवन के नित-नये अनुभव प्रदान करता है। प्राचीन अनुभवों को नवीन दृष्टिकोण देता है। कल्पना के विस्तार को बढ़ा कर मानवीय विवेक को नई मर्यादाएँ प्रदान करता है। उस के साथ-

साथ वह अपने चिन्तन का दृष्टिकोण भी साथ लाता है। यह चीज़ जो अब यों है, यदि यों होती, यों हो जाती या यों हो जाय तो क्या होता, क्या हो ? इन विचारों को पाठक के हृदय में उत्पन्न करना भी कहानी-कार ही का काम है। लेकिन यह सब-कुछ इस ढंग से व्यक्त होना चाहिये कि पाठक के हृदय की जो हर्षमय दशा है उसे ठेस न लगने पाये। यह एक अत्यन्त कठिन कार्य है। लेकिन संसार के हर अच्छे साहित्य के अच्छे साहित्यकारों ने इस कार्य को सम्पादित किया है। यदि आप उर्दू की सर्वश्रेष्ठ कहानियों का अध्ययन करेंगे, जो इस संग्रह में शामिल हैं, तो आपको ज्ञात होगा कि उर्दू भाषा के अच्छे कहानी-लेखकों ने भी अपने वर्षों के प्रयत्नों के बाद कतिपय कहानियाँ ऐसी लिखी हैं जो इस माप-दण्ड पर पूरी उतरती हैं।

प्रस्तुत संग्रह में उर्दू कहानीकारों की वह पौध सम्मिलित है जो प्रेमचन्द के बाद उर्दू-साहित्य में आई। जिन्होंने प्रेमचन्द, सुदर्शन, आज़म करेवी, मजनूं गोरखपुरी, यलदरम और अली अब्बास हुसैनी जैसे वयोवृद्ध साहित्यिकों के विरसे को अपनाया। उसमें नवीनता उत्पन्न की, विचारों तथा टेकनीक ने चिन्तन एवं दर्शन के नये मार्ग प्रशस्त किये। कहानी को जीवन का प्रतिनिधि तथा मार्ग-दर्शक बनाया, उसके द्वारा सामाजिक चेतना को बढ़ाया और उससे समाज की आलोचना तथा उस पर समीक्षा का काम लिया और यह काम इस ढंग से लिया कि कहीं पाठक का साथ कहानीकार के मस्तिष्क से पृथक् न हो जाय। भावना तथा चेतना का समन्वय नितान्त दुष्कर कार्य है। ज़रा अलग हुए तो कहानी बोझिल मालूम होने लगती है। आप इन कहानियों में बड़ा रस लेंगे, साथ ही यह भी अनुभव करेंगे कि विद्या तथा चिंतन-शक्ति, समझ तथा दर्शन के नये मार्ग आपके मस्तिष्क में दरीचे की नाईं खुलने लगे हैं।

उर्दू के कहानी-लेखकों की नई पौध से भारत का शिक्षित वर्ग भली-भाँति परिचित है। केवल उर्दू ही में नहीं, बल्कि अन्य भाषाओं में भी इन लेखकों की रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं और वे अपने पाठकों से प्रशंसा

प्राप्त कर चुके हैं। इनमें से अधिकतर लेखक ऐसे हैं जिनकी कहानियों का अनुवाद भारत की सभी बड़ी-बड़ी भाषाओं में हो चुका है। इनमें कुछ कहानीकार ऐसे हैं जिनकी कहानियाँ हिन्दुस्तान से बाहर यूरोप और एशिया की दूसरी बड़ी-बड़ी भाषाओं में अनूदित हुई हैं और उनकी गणना विश्व साहित्य में की जाती है। ये लोग बीसवीं सदी के हिन्दुस्तान के सांस्कृतिक जीवन से निरन्तर संघर्ष करने वाले सक्रिय कार्य-कर्त्ता हैं। इनकी कहानियों में मचलती हुई ज़िन्दगी का अध्ययन करना, उसे समझना, विचारों के उस प्रवाह पर विहंगम दृष्टि डालना जो इन कहानियों की आत्मा बन कर दौड़ता है, प्रत्येक शिक्षित मनुष्य का कर्तव्य है। उल्लासमय अवस्था के समर्थक होते हुए भी साहित्य में शीर्ष-स्थान प्राप्त करते रहते हैं। ये कहानियाँ आपको देर तक कुछ सोचने-समझने का अवसर प्रदान करती रहेंगी और यही कहानी का सब से बड़ा गुण है।

उर्दू कहानीकारों की इस नई पौध में आपको दर्जनों चमकते हुए नाम मिलेंगे जिन्होंने अपने विचारों तथा अनुभूतियों द्वारा उर्दू कथा-साहित्य के उपवन को सिंचित किया है, उसकी कलियों को फूल बनाया है, उसके गुल-बूटे सँवारे हैं और साहित्यागार को अपनी लेखनी से सजाया है। कहानीकारों में राजेन्द्रसिंह बेदी, अस्मत चुग़ताई, अहमदअली, अख़्तर हसन रायपुरी, ख़्वाजा अहमद अब्बास, महेन्द्रनाथ, अहमद नदीम कासिमी, रशीद जहाँ, सरला देवी, हसन असकरी, बलवन्तसिंह, उपेन्द्रनाथ अश्क, कुर्रतुलऐन हैदर, हाजरा मसरूर, शफ़ीकुर्रहमान, मधुसूदन, शौकत सिद्दीकी, ए० हमीद, जीलानी बानो, रामानन्द सागर, आदिल रशीद, क़ुदरतउल्ला शिहाब और बीसियों ऐसे कथाकार शामिल हैं जो अपने दिन-रात के प्रयत्नों से उर्दू कहानी की कला को प्रकाशित करते रहे हैं। आज उर्दू कथा-साहित्य के पास जो बहुमूल्य रत्न हैं वे इन्हीं लोगों के मिले-जुले परिश्रम का परिणाम है। इन तमाम लेखकों के परिश्रम को एक ही संकलन में लाना कठिन कार्य है। इसके लिये एक नहीं अनेक संग्रहों की

आवश्यकता है। प्रस्तुत संग्रह में मैंने इनमें से केवल थोड़े से लेखकों को चुना है और उनकी भी कुछ कहानियाँ चुनी हैं। यदि आपने मेरे इस प्रयास को सराहा और पसंद किया तो भविष्य में भी इस सिलसिले की और कड़ियाँ भी प्रस्तुत की जायेंगी।

'उड़ानें' में जो कहानी-लेखक सम्मिलित हैं उनके नाम ये हैं—राजेन्द्रसिंह बेदी, महेन्द्रनाथ, ख्वाजा अहमद अब्बास, बलवंतसिंह, अहमद नदीम क़ासिमी, अस्मत चुग़ताई, मुहम्मद हसन असकरी, आदिल रशीद और कृष्ण चन्द्र।

इनकी जो कहानियाँ इस संग्रह में शामिल हैं उनके नाम ये हैं—'ग्रहण', 'अजनबी लड़की', 'डैड-लैटर', 'जग्गा 'परमेश्वरसिंह', 'चौथी का जोड़ा', 'हरामज़ादी', 'दो बैल' और 'तिरंग चिड़िया'।

१—राजेन्द्रसिंह बेदी ने कहानी लिखना लाहौर की साहित्यिक पत्रिकाओं से आरंभ किया जबकि वे डाकखाने में एक कर्मचारी थे। उनकी पहली ही किताब ने शीघ्र ही उन्हें प्रथम श्रेणी के कहानी-लेखकों में स्थान दिला दिया। बेदी लिखने में बड़ी सावधानी रखते हैं और अपनी कहानियों का विषय-वस्तु और उनके क्रम तथा रूप में बड़े सोच-विचार से काम लेते हैं। मध्यम-वर्ग के जीवन को उन्होंने समीप से देखा है और वे उनकी समस्याओं पर बड़ी गहरी नज़र रखते हैं। अपने पात्रों के निर्माण में और अपने प्लाट की रचना में आश्चर्यजनक भावुकता से काम लेते हैं। उनके पात्र जीते-जागते मानवीय चित्र प्रतीत होते हैं और उनके कथानक जीवन की चलती-फिरती झाँकियाँ। बेदी की शैली में साधारणतया एक आकर्षक, हल्का व्यंग्य पाया जाता है, जिससे समाज पर उनकी आलोचना की कला की प्रवीणता का पता चलता है। कभी-कभी इस टीका में एक ऐसे शोक की रमक आती है जो पत्थर-दिल से पत्थर-दिल इनसान की आँखों में आँसू ले आती है। 'ग्रहण' उनकी शैली का एक अत्यंत आकर्षक नमूना है।

२—महेन्द्रनाथ की कहानियाँ सआदत हसन मण्टो और बलवंतसिंह

की ही कोटि में आती हैं। उन्होंने कभी अपने-आपको और अपनी कला को किसी एक वर्ग-विशेष के लिए सीमित नहीं किया। उनकी कहानियों के ताने-बाने में आपको हर प्रकार और हर वर्ग के पात्र मिल जाते हैं किन्तु इसके बावजूद उन्हें जितना रस नागरिक जीवन के निचले और पिसे हुए वर्गों के चित्रण में मिलता है उतना आनन्द किसी और में नहीं आता। घायल, बेबस तथा विकृत नागरिक पात्रों के चित्रण में उन्हें आश्चर्यजनक दक्षता प्राप्त है। उन्होंने इन लोगों के जीवन को करीब से देखा है—इतने करीब से कि उनका दुःख और दर्द, उनकी लाचारी और बेकसी उनके ही अपने दिल की आवाज़ मालूम होती है। महेन्द्रनाथ ने एक बहुत ही भावुक तथा दर्दभरा दिल पाया है। वे समाज के उन सम्बन्धों पर बहुत गहरी नज़र रखते हैं जो अच्छे-भले पात्रों को विकृत तथा विवश कर देते हैं। उनकी कलम जगह-जगह से ज़ख्म की तरह दुखती है और टीस पैदा करती हैं। 'अजनबी लड़की' उनकी लेखन-शैली का एक आकर्षक उदाहरण है। महेन्द्रनाथ के उपन्यास तथा कहानियाँ हिन्दी के अतिरिक्त भारत की अन्य भाषाओं में भी प्रकाशित हो चुकी हैं और यूरोप की कई भाषाओं में उनका अनुवाद हो चुका है।

३—ख्वाजा अहमद अब्बास ने कहानी के रूप तथा विषय-वस्तु के संपादन में अनेक नये प्रयोग किये हैं। 'डैड-लैटर' एक ऐसे ही प्रयोग का ज्वलंत उदाहरण है। अब्बास बहुत ही सरल तथा सुगम भाषा का प्रयोग करते हैं जिसे एक मामूली पढ़ा-लिखा भी समझ सकता है। और वे इस बात के लिए विशेष चेष्टा करते हैं कि जो बात वे लिखना चाहते हैं वह पाठक पूर्णतया हृदयंगम कर सकें। लेकिन किसी स्थान पर भी वह शुद्ध साहित्यिकता तथा उल्लासमय दशा जो उच्च साहित्य के सर्वप्रथम मूल्य हैं, अपने हाथ से नहीं जाने देते। अब्बास एक प्रख्यात लेखक, एक ख्याति-प्राप्त पत्रकार तथा एक प्रसिद्ध फ़िल्म-निर्माता हैं। अपने जीवन की विभिन्न व्यस्तताओं के कारण उन्हें भारतीय समाज के विभिन्न अंगों को समीप से देखने का अवसर मिला है। वे अपने सीने में एक भावुक

दिल रखते हैं और इस भावुक दिल ने उनसे जो कुछ लिखवाया है, वह उनकी प्रौढ़ दृष्टि और इनसानी दोस्ती का द्योतक है। अब्बास अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त साहित्यकार हैं और उनकी अधिकतर कहानियों और उपन्यासों का अनुवाद यूरोप की कई भाषाओं में हुआ है और अत्यन्त लोकप्रिय हुआ है।

४—यदि सआदत हसन मण्टो ने उन पात्रों पर नज़र रखी जो फ़िल्म के बाज़ार में और वेश्याओं के बाज़ार में अपने जीवन बेचते हैं और अपनी अधिकांश कहानियों में उनकी घायल ज़िन्दगियाँ पेश कीं तो बलवंतसिंह ने उनसे हटकर पंजाब के कुछ जरायमपेशा कबीलों में से ऐसे पात्र ढूंढ निकाले जिनके बारे में सुना बहुत कुछ गया है, जिनके बारे में अखबारों में बहुत कुछ लिखा गया है लेकिन जिनके वातावरण, जिनकी प्रकृति, जिनका चरित्र-चित्रण आज तक कोई न कर सका था। बलवंतसिंह की 'जग्गा' एक मशहूर डाकू के चरित्र की कहानी है जिसके सम्बन्ध में आज भी पंजाब के गाँवों में तरह-तरह की जन-श्रुतियाँ प्रसिद्ध हैं। बलवंतसिंह की इन कहानियों से पंजाब के खिलते खेतों की सुगन्ध आती है और उस संकल्प, उत्साह, वीरता और साहस का पता चलता है जिनके कारण यह धरती प्रसिद्ध है।

५—अहमद नदीम क़ासिमी पोठोहार के इलाके में पैदा हुए जो अब पश्चिमी पाकिस्तान का एक भाग है। यह प्रदेश पंजाब तथा सीमा-प्रान्त के बीच का एक हिस्सा है और इसीलिए यहाँ के लोगों में दोनों हिस्सों के सर्वश्रेष्ठ रोमान एकत्र हो गये हैं—साहस, स्पष्टवादिता, मानवीय सहानुभूति और प्रेम, इनसान का इनसान के लिए शोक और उसके लिए सच्चे समर्थन तथा सहानुभूति की भावना एक सम्मान के साथ क़ासिमी की कहानियों में दृष्टिगोचर होती है। भारतविभाजन के दिनों में जिस प्रकार घृणा और एक-दूसरे के लिए जुल्म और अत्याचार की भावना हिन्दुओं और मुसलमानों में उभरी, उसने क़ासिमी की आत्मा को जगह-जगह से घायल कर दिया। उस समय सच बात का कहना

बहुत कठिन था। उस समय घृणा को परे हटा कर इनसानी मुहब्बत को टटोलना, इनसानी हमदर्दी को आवाज़ देना बहुत मुश्किल काम था। लेकिन क़ासिमी क्षणिक भावुकता के बहाव में नहीं बह गये, उन्होंने एक मानव-प्रेमी लेखक के रूप में अपनी जान जोखिम में डाल कर हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच इनसानी दोस्ती की आवाज़ उठाई। उर्दू-साहित्य का इतिहास इस महत्वपूर्ण योगदान को सदैव याद रखेगा और जो कहानियाँ क़ासिमी नें इस विषय पर लिखीं, उन्हें भी। 'परमेश्वरसिंह' अहमद नदीम क़ासिमी की एक ऐसी ही अमर कहानी है जिसकी तह इनसानी घृणा नहीं इनसानी मुहब्बत है। इसी सार्वभौम प्रेम की अनुभूति से परिपूर्ण होकर क़ासिमी ने अपनी कहानियों की रचना की है।

६—अस्मत चुग़ताई की कहानियाँ मुस्लिम घरानों के घरेलू जीवन की जीवित तसवीरें हैं। यदि बेदी पंजाबी घरानों के जीवन के चित्रण में दक्ष हैं तो यही कर्त्तव्य अस्मत चुग़ताई यू० पी० के मध्यम-वर्ग के मुस्लिम घरानों के सम्बन्ध में पूरा करती हैं। बेदी अपनी लेखनी में जितने सावधान हैं, अस्मत उतनी ही निर्भीक हैं। उनकी लेखनी की शोख़ी और आकस्मिकता कदम-क़दम पर ऐसे नश्तर चुभोती जाती है कि पढ़ने वाला पहले तो एकदम हँस देता है और फिर नश्तर महसूस करके रो देता है। अस्मत के स्वभाव का तीखापन, उनकी स्पष्टवादिता, वस्तुओं को परखने का विशिष्ट दृष्टिकोण जो जागृत स्त्रियों में पाया जाता है, उनकी कहानियों में विशेष रूप से झलकता है। वे बातें जो पुरुष कहानीकार भी छिपा जाते हैं या जहाँ तक उनकी दृष्टि नहीं पहुँचती, अस्मत उनकी तहें खोलती हैं, उनके बखिये उधेड़ती है और प्रत्येक स्थिति का आवरण उतारकर आपके सम्मुख इस प्रकार रख देती हैं कि आप क्रोध से झुंझला जाते हैं, खिसियानी हँसी हँसते हैं किन्तु उसकी वास्तविकता से इनकार नहीं कर सकते। पूर्वी नारी की बेबसी, विवशता, उसका दुःख और दर्द, उसके घर का घुटा-घुटा वातावरण, समाज का अत्याचार इन सब बातों की व्याख्या आपको अस्मत की प्रसिद्ध कहानी 'चौथी का

जोड़ा' में मिलेगी ।

७—मुहम्मद हसन असकरी ने बहुत कम कहानियाँ लिखी हैं। उनकी कहानियों की कुल संख्या डेढ़ दर्जन से अधिक नहीं है। लेकिन ये कहानियाँ लिख कर ही उन्होंने उर्दू के कथा-साहित्य में अपना स्थान बना लिया है। असकरी ने फ्रांसीसी साहित्य का सीधे फ्रांसीसी भाषा से अध्ययन किया है और बहुत गहन अध्ययन किया है। और वे अंग्रेजी साहित्य के बजाय फ्रांसीसी साहित्य से अधिक प्रभावित हुए हैं। यही कारण है कि उनकी लेखन-शैली भी अन्य अनेक लेखकों से भिन्न है जो अधिकतया अंग्रेजी साहित्य से प्रभावित होते हैं। इसीलिए उनका ढंग दूसरों से भिन्न है। असकरी समाज पर चोट नहीं करते बल्कि उसकी चेतना की अंदरूनी पर्तों को खोलते हैं और उस लावे को नग्न करते हैं जो सभ्यता व संस्कृति की पतली झिल्ली के अन्दर छिपा होता है। उन की कला में बाह्यतत्व बहुत कम हैं और आन्तरिक तत्त्व बहुत ज्यादा, कहानी के तारतम्य में प्रायः यही आंतरिकता छिपी रहती है। 'हरामजादी' उनकी एक प्रख्यात कला-कृति है जिसने उर्दू-साहित्य में अपनी एक स्थायी जगह बना ली है।

८—आदिल रशीद उर्दू के साहित्य के प्रसिद्ध कहानी-लेखक तथा उपन्यासकार हैं। उनके दो उपन्यास हाल ही में फिल्माये गये हैं और अब उनके हिन्दी में भी अनुवाद हो रहे हैं। वे इलाहाबाद के रहने वाले हैं इसलिए उनकी भाषा तथा शैली में वह सोंधापन है जो हिन्दी और उर्दू के समन्वय की देन है। जिसे प्रेमचन्द ने फैलाया, बढ़ाया और दोनों भाषाओं में समादर का स्थान दिलवाया। आदिल रशीद इस शैली को आगे बढ़ाने वाले हैं। न केवल शैली में, बल्कि अपनी कहानियों की रचना में उनका कलम उसी ओर चलता है जिस ओर इनसान का भविष्य चलता है। हर प्रकार की अवसरवादिता से बचते हुए, हर प्रकार के वैयक्तिक शोक का शिकार होते हुए भी उन्होंने अपनी कहानियों के केन्द्र में इनसानी दोस्ती की उस मशाल को जगमगाये रखा है जिससे आज-

कल की उर्दू कहानी का दिल प्रकाशित है। प्रस्तुत कहानी 'दो बैल' उनकी लेखनी-शैली का सुन्दर चित्रण है।

९—कृष्णचन्द्र उर्दू और हिन्दी दोनों भाषाओं में लिखते हैं और दोनों भाषाओं में उनकी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इसके अलावा उनकी अनेक कहानियाँ और पुस्तकें भारत की लगभग सभी बड़ी भाषाओं में अनूदित हो चुकी हैं। भारत से बाहर यूरोप तथा एशिया की दो दर्जन से अधिक भाषाओं में उनके उपन्यासों तथा कहानियों का अनुवाद हो चुका है। वे तीस पुस्तकों के प्रणेता हैं। जिनमें कहानी, उपन्यास, नाटक हास्यपूर्ण लेख, आलोचनात्मक लेख, रिपोर्ताज़ और यात्रा-दर्शन सम्मिलित हैं। प्रस्तुत संग्रह में उनकी कहानी 'तिरंग चिड़िया' शामिल है जो उनके पहले काल की लेखन-शैली का नमूना है।

—कृष्णचन्द्र

ग्रहण

राजेन्द्रसिंह बेदी

रूपो, सिब्बो, कत्थू और मुन्ना—होली ने असाढ़ी के कायस्थों को चार बच्चे दिये थे; और पाँचवाँ कुछ ही महीनों में जनने वाली थी। उसकी आँखों के चारों ओर गहरे काले गढ़े पड़ने लगे; गालों की हड्डियाँ उभर आईं और माँस उन में चिपक गया। वह होली, जिसे पहले-पहल मय्या प्यार से चाँदरानी कह कर पुकारा करती थी और जिसके स्वास्थ्य और सुन्दरता का रसीला हारू था, गिरे हुए पत्तों की तरह पीली और उदास हो चुकी थी।

आज रात चाँद ग्रहण था। संध्या से ही चाँद में ग्रहण प्रविष्ट हो जाता है। होली को आज्ञा न थी कि वह कोई कपड़ा फाड़ सके—पेट में बच्चे के कान फट जायेंगे; वह सी न सकती थी—मुँह-सिला बच्चा पैदा होगा; अपने मैके पत्र न लिख सकती थी—उसके टेढ़े-मेढ़े अक्षर बच्चे के चेहरे पर लिख जायेंगे; और मैके पत्र लिखने का उसे बड़ा चाव था।

मैके का नाम आते ही उसका सम्पूर्ण शरीर एक अज्ञात मनोभाव से काँप उठता; वह मैके थी तो उसे ससुराल का कितना चाव था; लेकिन अब वह ससुराल से इतनी ऊब चुकी थी कि वहाँ से भाग जाना चाहती थी। इस बात की उसने कई बार तैयारी भी की; लेकिन प्रत्येक बार असफल रही। उसके मैके असाढ़ी गाँव से पच्चीस मील की दूरी पर थे। समुद्र के तट पर हरफूल बन्दर पर संध्या के समय स्टीमर लाञ्च मिल

जाता था और तट के साथ-साथ डेढ़-दो घंटे की यात्रा के पश्चात् उसके मैके गाँव के बड़े मन्दिर के मुरचा लगे हुए कलश दिखाई देने लगते थे।

आज संध्या होने से पहले रोटी, चौका-बर्तन के काम से निवृत्त होना था। मय्या कहती थी, ग्रहण से पहले रोटी इत्यादि खा लेनी चाहिए नहीं तो प्रत्येक कार्य बच्चे के शरीर व भाग्य पर प्रभाव डालता है। गोया उस भद्दी, चौड़े नथुनों वाली हठीली मय्या को अपनी बहू हमीदा-बानू के पेट से किसी अकबरे आज़म की आशा है। चार बच्चे, तीन पुरुषों, दो स्त्रियों, चार भैंसों का सम्मिलित बड़ा परिवार और अकेली होली! दोपहर तक तो होली बर्तनों का ढेर साफ़ करती रही, फिर पशुओं के लिए बिनौले, खली और चने भिगोने चली, यहाँ तक कि उसके कूल्हे में पीड़ा होने लगी और वे फटने-से लगे। विद्रोह-पसंद बच्चा पेट में अपनी निर्बल किन्तु होली को तड़पा देने वाली हरकतों से शिकायत करने लगा। पराजय का अनुभव होने से चौकी पर बैठ गई, किन्तु वह अधिक समय तक चौकी या ज़मीन पर बैठने के योग्य न थी और फिर मय्या के विचार के अनुकूल चौड़ी-चकली चौकी पर बहुत देर बैठने से बच्चे का सिर चपटा हो जाता है; मोढ़ा हो तो अच्छा है। कभी-कभी होली मय्या और कायस्थों की आँख बचा कर खाट पर सीधी पड़ जाती और एक भर-पेट खाई हुई कुतिया की तरह टाँगों को अच्छी तरह से फैला कर जम्हाई लेती और फिर उसी समय काँपते हुए हाथों से अपने नन्हे-से नर्क को सहलाने लगती।

यह विचार करने से कि वह शीतल की बेटी है, वह अपने-आपको रोक न सकती थी। शीतल सारंगदेव ग्राम का एक अमीर साहूकार था और सारंगदेव ग्राम के आस-पास के बीच के गाँव के किसान उससे व्याज पर रुपया लेते थे। इतना होते हुए भी कायस्थों के यहाँ उसे अपमानित किया जाता था। होली के साथ कुत्तों से भी बुरा व्यवहार होता था। कायस्थों को तो बच्चे चाहिये, होली का सत्यानाश भले हो जाये। गोया सारे गुजरात में ये कायस्थ ही कुलवधू (कुल का सिर ऊँचा करने वाली

बहू) का सत्य अर्थ समझते थे।

प्रतिवर्ष डेढ़ साल के पश्चात् वह एक नया कीड़ा घर में रेंगता हुआ देख कर प्रसन्न होते थे। बच्चे के कारण खाया-पिया होली के बदन पर कुछ प्रभाव नहीं करता था। सम्भवतः उसे रोटी भी इसलिए दी जाती थी कि पेट में बच्चा माँगता है और इसलिए उसे गर्भ धारण के आरम्भ में चाँट और सब फल स्वतन्त्रता से दिये जाते थे।

"देवर है तो वह अलग पीट लेता है—होली सोचती थी, और सासु के कोसने मारपीट से कहीं बुरे हैं और बड़े कायस्थ जब डाँटने लगते हैं तो पाँव तले से ज़मीन निकल जाती है, इन सब को भला मेरी जान लेने का क्या अधिकार है?........ रसीला की तो बात ही दूसरी है, शास्त्रों ने उसे परमात्मा की श्रेणी दी है; वह जिस छुरी से मारे उस छुरी का भला?............किन्तु क्या शास्त्र किसी स्त्री ने बनाये हैं? और मय्या की तो बात ही अलग है—शास्त्र किसी औरत ने लिखे होते तो वह अपनी स्त्रीलिंग जाति पर इससे भी अधिक अस्वाधीनता निर्माण करती ....।" ....राहु अपने नये भेष में अत्यन्त संतोष से अमृत पी रहा था, चन्द्र और सूर्य ने विष्णु भगवान् को इस बात की सूचना दी और भगवान् ने सुदर्शनचक्र द्वारा राहु के दो टुकड़े कर दिए। उसका सिर और धड़ दोनों आकाश पर जा कर राहु और केतु बन गये। सूर्य और चन्द्र दोनों उसके अधीन और ऋणी हैं। अब वह प्रतिवर्ष दो या दो से अधिक बार चन्द्र और सूर्य से प्रतिकार लेते हैं। और होली सोचती थी—परमेश्वर के खेल भी न्यारे हैं .... और राहु की बनावट कैसी अद्भुत है। एक काला-सा राक्षस-शरीर चढ़ा हुआ देख कर कितना भय लगता है। रसीला भी तो शक्ल से राहु ही दिखाई देता है। मुन्ना के जन्म पर अभी चालीसवाँ भी न नहाई थी, तो आ मौजूद हुआ—क्या मुझे भी इस का ऋण चुकाना है?

उस समय होली के कानों में माँ-बेटे के आने की भनक पड़ी। होली ने दोनों हाथों से पेट को सम्भाला और उठ खड़ी हुई और जल्दी से तवे

को धीमी-धीमी आँच पर रख दिया। अब उसमें झुकने की शक्ति न थी कि फूँकें मारकर आग जला सके। उसने कोशिश भी की किन्तु उसके नेत्र फट कर बाहर आने लगे। रसीला ने एक मरम्मत किया हुआ छाज (पछोरने वाला सूप) हाथ में लिए भीतर प्रवेश किया। उसने जल्दी से हाथ धोये और स्फुट स्वर में बड़बड़ाने लगा। उसके पीछे मय्या आई और आते ही बोली—"बहू ····अनाज रखा है क्या ?"

होली डरते-डरते बोली—"हाँ हाँ······रखा है—नहीं रखा, याद आया, भूल गई थी मय्या······।"

"तो बैठी क्या कर रही है नवाबज़ादी ?"

होली ने करुणा-भरी दृष्टि से रसीले की ओर देखा और बोली—"जी मुझसे अनाज की बोरी हिलाई नहीं जाती ?"

मय्या निरुत्तर हो गई। और यों भी होली की तुलना में उसके पेट में बच्चे की अधिक चिन्ता थी; शायद इसीलिए होली की आँखों-में-आँखें डालते हुए बोली—"तूने सुर्मा क्यों लगाया है री ? राँड ! जानती भी है आज ग्रहण है, जो बच्चा अंधा हो जाए तो तेरी जैसी वेश्या इसे पालने चलेगी ?"

होली चुप हो गई और निगाहें ज़मीन पर गाड़ते हुए मुँह में कुछ बुदबुदाती गई। और सब हो जाय लेकिन राँड की गाली उसकी सहन-शक्ति से बाहर थी।

उसे बुदबुदाते देख कर मय्या और भी बकती-झकती चाबियों का गुच्छा ढूँढ़ने लगी। एक मैले शमादान के निकट सुर्मा पीसने का खरल रखा हुआ था। उसमें से चाबियों का गुच्छा निकाल कर वह भण्डार की कोठरी की तरफ़ चली गई। रसीले ने एक सचेत दृष्टि से होली की तरफ़ देखा। उस समय होली अकेली थी। रसीले ने धीरे से आँचल को छुआ। होली ने डरते-डरते आँचल झटक दिया। और अपने देवर को पुकारने लगी; गोया दूसरे व्यक्ति की उपस्थति चाहती है। इस दशा में पुरुष को ठुकरा देना साधारण बात नहीं होती, रसीला आवाज़ को चबाते

हुए बोला

"मैं पूछता हूँ भला इतनी जल्दी काहे की थी ?"

"जल्दी कैसी !"

रसीला पेट की तरफ़ संकेत करके बोला—"यही तुम भी तो कुतिया हो कुतिया !"

होली सहम कर बोली—"तो इसमें मेरा क्या अपराध है ?"

होली ने अनजानेपन में रसीले को जंगली, व्यभिचारी, बद-चलन सभी कुछ कह दिया। चोट सीधी पड़ी; रसीले के पास इस बात का कोई उत्तर नहीं था—निरुत्तर मनुष्य का उत्तर चुप होता है। दूसरे क्षण में उंगलियों के निशान होली के कपोलों पर अंकित हो गये।

उसी समय मय्या उड़द की एक टोकरी उठाये हुए भंडार की तरफ़ से आई, और बहू से बुरा व्यवहार करने के कारण से बेटे को झिड़कने लगी। होली को रसीले पर तो क्रोध न आया; अलबत्ता मैय्या की इस आदत से जल-भुन गई—"राँड आप मारे तो इससे भी ज़्यादा; और जो बेटा कुछ कहे तो हमदर्दी जताती है। बड़ी आई है···।"

होली सोचती थी कल रसीले ने मुझे इसलिए मारा था कि मैंने उसकी बात का जवाब नहीं दिया और आज इसलिए मारा है कि मैंने बात का जवाब दे दिया है। मैं जानती हूँ वह मुझसे क्यों नाराज़ है, क्यों गालियाँ देता है, मेरे भोजन बनाने, उठने-बैठने में उसे क्यों अच्छा ढंग दिखाई नहीं देता···और मेरी यह दशा है कि नाक में दम आ चुका है। पुरुष स्त्री को मुसीबत में फँसा कर अलग हो जाते हैं। ये पुरुष !

मय्या ने कुछ बासमती, दालें और नमक इत्यादि रसोई में बिखेर दिया और फिर एक भीगी हुई तराज़ू से उसे तोलने लगी। तराज़ू गीला था, यह मय्या भी देख रही थी और जब बासमती चावल पेंदे में चिपक गये तो बहू मरती-करती फूहड़ हो गई और आप इतनी सुघड़ कि नये दुपट्टे से पेंदा साफ़ करने लगी। जब बहुत मैला हो गया तो दुपट्टे को सिर से उतार कर होली की तरफ़ फेंक दिया और बोली—

"ले धो डाल।"

अब होली नहीं जानती बेचारी कि वह रोटियाँ पकाये या दुपट्टा धोये; बोले या न बोले; हिले या न हिले; वह कुतिया है या नवाबज़ादी। उसने दुपट्टा धोने ही में भलाई समझी। इस समय चन्द्र ग्रहण की छाया में प्रवेश करने वाला ही होगा, बच्चा धुले हुए कपड़े की तरह चुर-मुर सा पैदा होगा, और अगर मास दो मास बाद बच्चे की बुरी-सी आकृति देख कर उसे कोसा जावे तो उसमें होली का क्या कुसूर है?··· लेकिन कुसूर और बेकुसूरी की तो बात अलहिदा है, क्योंकि यह कोई सुनने के लिए तैयार नहीं कि इसमें होली का क्या अपराध है···सब अपराध होली का है।

उसी समय होली को सारंगदेव ग्राम याद आ गया, किस तरह असौज के आरम्भ में दूसरी स्त्रियों के साथ गरबा नाचा करती थी और भाभी के सिर पर रखे हुए घड़े के छिद्रों में से प्रकाश फूट-फूट कर दालान के चारों कोनों को प्रज्ज्वलित कर दिया करता था। उस समय सब स्त्रियाँ अपने सुकोमल मेंहदी-रचे हाथों से तालियाँ बजाया करती थीं और गाया करती थीं।

उस समय वह एक उछलने-कूदने वाली अल्हड़ छोकरी थी, स्वतंत्र थी; जो चाहती थी पूरा हो जाता था। घर में सबसे छोटी थी, नवाबज़ादी तो न थी, और उसकी सहेलियाँ—वे भी अपने-अपने प्रेमियों के पास जा चुकी होंगी। ···सारंगदेव ग्राम में ग्रहण के अवसर पर जी खोल कर दान-पुण्य किया जाता है, स्त्रियाँ एकत्र होकर त्रिवेदी घाट पर स्नान के लिए चली जाती हैं। फूल, नारियल, बताशे समुद्र में बहाती हैं, पानी की एक उछाल मुँह खोले हुए आती है और सब फूल-पत्तों को स्वीकार कर लेती है। उस समय के स्नान से सब पुरुष और स्त्रियों के पापों का प्रायश्चित्त हो जाता है; उन पापों का जिनका वहन लोग गत वर्ष से करते रहे हैं। स्नान से सब पाप धुल जाते है, शरीर और आत्मा पवित्र हो जाता है। समुद्र की लहर लोगों के सब अपराधों को बहा कर

दूर—बहुत दूर एक अज्ञात, अपार समुद्र में ले जाती है…एक वर्ष बाद फिर लोगों के शरीर पापों से लथपथ हो जाते हैं; फिर दया की एक लहर आती है और फिर स्वच्छ और पवित्र ।

जब ग्रहण आरम्भ होता है और प्रकाशित चन्द्र में धब्बा लग जाता है तो कुछ क्षणों के लिए चारों ओर ख़ामोशी और फ़िर राम-नाम का जाप शुरू हो जाता है; फिर घण्टे, शंख, घड़ियाल बजने लगते हैं, इस कोलाहल में स्नान के बाद सब पुरुष-स्त्रियाँ सामूहिक रूप में गाते-बजाते गाँव लौट आते हैं ।

ग्रहण के मध्य में गरीब लोग बाज़ारों और गली-कूचों में दौड़ते हैं; लंगड़े बैसाखियाँ घुमाते हुए अपनी-अपनी झोलियाँ थामे प्लेग के चूहों की तरह गिरते-पड़ते भागते चले जाते हैं; क्योंकि राहु और केतु ने सुन्दर चाँद को घेर कर पूरी तरह से जकड़ लिया है । दयावान् हिन्दू दान देता है; ताकि ग्रसित चन्द्र को ग्रह से छुटकारा मिल जाये; दान लेने के लिये भागने वाले भिखारी—छोड़ दो; दान का समय है; छोड़ दो; का शोर मचाते हुए मीलों की यात्रा पार कर लेते हैं ।

चन्द्रमा ग्रहण की छाया में आने वाला ही था । होली ने बच्चों को बड़े कायस्थ के पास छोड़ा, एक मैली-कुचैली धोती पहन ली, और स्त्रियों के साथ स्नान करने चली ।

अब मय्या, रसीला, बड़ा लड़का शिब्बू और होली सब समुद्र की ओर जा रहे थे, उनके हाथों में फूल थे, गजरे थे, आम के पत्ते थे और बड़ी अम्मा के हाथ में रुद्राक्ष की माला के अतिरिक्त कपूर था; जिसे वह जलाकर पानी की लहरों पर बहा देना चाहती थी ताकि मृत्यु के पश्चात् यात्रा में उसका रास्ता प्रकाशित हो जाये; और होली डरती थी—क्या उसके पाप समुद्र के पानी से धुल जायेंगे ?

समुद्र के किनारे घाट से पौन मील के करीब एक लान्च खड़ा था । वह स्थान हरफूल बन्दर का एक भाग था; बन्दर के छोटे-से असतल तट और एक साधारण से डाक पर कुछ अस्त होते हुए सूर्य में प्रकाश

और अँधेरे की खींचातानी के विरुद्ध नन्हे-नन्हे अकृज्ञता के ढाँचे बन रहे थे; और लान्च के किसी केबिन से एक हल्की-सी टिमटिमाती हुई रोशनी, पारे की रंगत की पानी की लहरों पर नाच रही थी। उसके बाद एक चर्खी-सी घूमती हुई दिखाई दी; कुछ एक धुँधली-सी छाया एक अजगर-नुमा शै को खींचने लगी। आठ बजे स्टीमर लान्च की आखिरी सीटी थी;—फिर वह सारंगदेव ग्राम की ओर रवाना हो गया। अगर होली उस पर सवार हो जाये तो फिर डेढ़-दो घण्टे में वह चाँदनी में नहाते हुए गोया शताब्दियों से परिचित कलश दिखाई देने लगें···और फिर वही [illegible]···[illegible] और गरबा नाच !

होली ने एक दृष्टि से शिब्बू की ओर देखा। शिब्बू हैरान था कि उसकी माँ ने इतनी भीड़ में झुक कर उसका मुँह क्यों चूमा; और एक गर्म-गर्म बूँद कहाँ से उसके गालों पर आ पड़ी ? उसने आगे बढ़कर रसीले की उंगली पकड़ ली। अब घाट आ चुका था, जहाँ से मर्द औरतें अलग होती थीं; सदैव के लिये नहीं, केवल कुछ घंटों के लिये · इसी पानी की गवाही में वे अपने पुरुषों से बाँध दी गई थीं; पानी में भी कि़तनी महत्वपूर्ण शक्ति है···और दूर से लान्च की टिमटिमाती हुई रोशनी होली तक पहुँच रही थी।

होली ने भागना चाहा, मगर वह भाग भी तो न सकती थी, उसने अपनी हल्की-सी धोती को कसकर बाँधा। धोती नीचे की ओर खिसक जाती थी;······आध घन्टे में वह लान्च के सामने खड़ी थी; लान्च के सामने नहीं, सारंगदेव ग्राम के सामने··· · वह कलश, मन्दिर के घन्टे, लान्च की सीटी; और होली को स्मरण आया कि उसके पास तो टिकट के लिये भी पैसे नहीं हैं।

वह कुछ विलम्ब तक लान्च के एक कोने में घबराई हुई बैठी रही। पौने आठ वजे के लगभग एक टेन्डल आया, और होली से टिकट माँगने लगा। टिकट न पाने पर वह चुपचाप वहाँ से टल गया। कुछ देर बाद नौकरों की काना-फूसियाँ सुनाई देने लगीं। फिर अन्धेरे में सूक्ष्म-सी हँसी

और बातों के शब्द आने लगे, कोई-कोई शब्द होली के कान में भी पड़ जाता—कुंजी···तो लें ··चाभियाँ मेरे पास हैं···पानी अधिक होगा···।

इसके पश्चात् भयानक अट्टहास बुलन्द हुए और कुछ देर बाद तीन-चार आदमी होली को लाञ्च के एक अँधेरे कोने की ओर ढकेलने लगे, उसी समय आबकारी के एक सिपाही ने लाञ्च में प्रवेश किया। ठीक जबकि दुनिया होली की आँखों में अन्धेरी हो रही थी। होली को आशा की एक लौ दिखाई दी, वह सिपाही सारंगदेव ग्राम का ही एक छोकरा था, और मैके के नाते से उसका भाई था, छः साल हुए बड़ी उमंगों के साथ गाँव से बाहर निकला था और साबरमती फाँदकर किसी अज्ञात देश को चला गया था। कभी-कभी विपत्ति के समय मनुष्य का ज्ञान उचित हो जाता है, होली ने सिपाही को आवाज़ से ही पहचान लिया, और कुछ साहस से बोली—

"कत्थूराम !"

"होले !"

होली विश्वास सेप रिपूर्ण परन्तु घबराई हुई आवाज़ में बोली—"कत्थू भइया···मुझे सारंगदेव ग्राम पहुँचा दो।" कत्थूराम पास आया और एक टेंडल को घूरते हुए बोला—

"सारंगदेव जाओगी होले ?" और फिर सामने खड़े हुए मनुष्य की ओर दृष्टि स्थिर करके बोला—"तुमने इसे यहाँ क्यों रखा है भाई ?"

टेंडल जो सबसे निकट था बोला—

"बेचारी कोई दुखिया है, इसके पास तो टिकट के पैसे भी नहीं थे, हम सोच रहे थे, हम इसकी क्या सहायता कर सकते हैं ?"

कत्थूराम ने होली को साथ लिया, और लाञ्च से नीचे उतर आया, डाक पर पैर रखते हुए बोला—

"होले···क्या तुम असाढ़ी से भाग आई हो ?"

"हाँ !"

"यह शरीफ़ज़ादियों का काम है ?···और जो मैं कायस्थों को खबर

कर दूँ तो ?"

होली डर से काँपने लगी, वह न तो नवावजादी थी और न शरीफ-जादी। इस स्थान पर ऐसी दशा में वह कत्थूराम को कुछ कह भी तो न सकती थी। वह अपनी निर्बलता का अनुभव करती हुई, मौन समुद्र की बड़ी-बड़ी तरंगों को देखने लगी। फिर उसके सामने लाञ्च के रस्से ढीले किये गये, एक हल्की-सी ह्विसिल हुई और हौले-हौले सारंगदेव ग्राम होली की दृष्टि से ओझल हो गया। उसने एक बार पीछे की ओर देखा, लाञ्च के धीमे प्रकाश में उसे झाग की एक लम्बी-सी लकीर लाञ्च का पीछा करती हुई दिखाई दी।

कत्थूराम बोला—"डरो नहीं होले···मैं तुम्हारी प्रत्येक सम्भव सहायता करूँगा, यहाँ से कुछ दूर नाव पड़ती है, पौ फटे ले चलूँगा, यों घबराओ नहीं, रात-की-रात सराय में आराम कर लो।"

कत्थूराम होली को सराय में ले गया। सराय का मालिक बड़े आश्चर्य से कत्थूराम और उसकी साथी को देखता रहा; आखिर जब वह न रह सका तो उसने कत्थूराम से अत्यन्त धीमे स्वर में पूछा— "यह कौन है ?"

कत्थूराम ने धीरे से उत्तर दिया—"मेरी पत्नी है।"

होली की आँखें पथराने लगीं, एक बार उसने अपने को सहारा दिया और दीवार का सहारा लेकर बैठ गई। कत्थूराम ने सराय में एक कमरा किराये पर लिया। होली ने डरते-डरते उस कमरे में पैर रखा। कुछ देर बाद कत्थूराम आया तो उसके मुँह से शराब की दुर्गन्ध आ रही थी······

समुद्र की एक बड़ी भारी उछाल आई, सब फूल, बताशे, आम की टहनियाँ, गजरे और जलता हुआ सुगन्धित कपूर बहा कर ले गई; इस के साथ ही मनुष्य के नारकीय पाप भी लेती गई, दूर—बहुत दूर एक अज्ञात, अयोग्य, पारदर्शी, माप के अयोग्य समुद्र की ओर ·····जहाँ अन्धकार-ही-अन्धकार था। फिर शंखध्वनि होने लगी। उस सराय में

से कोई स्त्री निकल कर भागी, सरपट···वह गिरती थी, भागती थी, पेट पकड़ कर बैठ जाती थी, हाँपती थी और दौड़ने लगती थी।

उस समय आकाश पर चन्द्रमा पूरा ग्रसित हो चुका थ, राहु और केतु ने जी भर कर प्रतिकार वसूल किया था,···दो धुँधले-से प्रतिबिंब उस स्त्री की सहायता के लिये तत्पर इधर-उधर दौड़ रहे थे···चारों ओर अन्धकार-ही-अन्धकार था, और दूर असाढ़ी से सूक्ष्म शब्द आ रहे थे···

दान का समय है ··
छोड़ दो···छोड़ दो···छोड़ दो···
हरफूल बन्दर से आवाज़ आई—
पकड़ लो···पकड़ लो ·· पकड़ लो
छोड़ दो···दान का समय है ··
पकड़ लो···छोड़ दो ! !

अजनबी लड़की

महेन्द्रनाथ

कमल ने कहा था कि वह साढ़े तीन बजे फ्लौरा फ़ाउन्टेन के बस-स्टाप पर पहुँच जायेगी। साढ़े तीन बज चुके थे, लेकिन कमल अभी न आई थी; वह बस के अड्डे पर खड़ा उसका इन्तज़ार कर रहा था, ज्यों-ज्यों समय व्यतीत हो रहा था, वह कुछ बेचैन-सा हो रहा था और साथ ही उसने सोच लिया था कि वह चार बजे तक कमल की प्रतीक्षा करेगा; अगर वह चार बजे तक नहीं आई तो वहाँ से चला जायगा। वह प्रायः लगभग डेढ़ माह के बाद कमल से मिल रहा था। इससे पहले इस अंतर में उसके एक-दो मिलन हुए थे, लेकिन इस अरसे में वह अपने दिल की बात न कह सका था, और कमल भी अपने मन की बात व्यक्त न कर सकी। आज वह खुल कर कमल से बात करेगा। उसने फिर घड़ी की तरफ़ देखा तो पाँच मिनट और व्यतीत हो चुके थे। हवा मन्द और धीमी-धीमी बह रही थी, आसमान बादलों से घिरा हुआ था, ऋतु सुहावनी थी, और वह वास्तव में कमल से मिलना चाहता था। "क्या कमल आयेगी ?" उसके दिल में यह विचार अचानक आया, कई दिनों से वह सोच रहा था कि कमल उससे कुछ रूठ-सी गई है। इस अर्से में अगर वह उससे मिली तो अत्यन्त उद्विग्न अवस्था में कुछ खोई-खोई-सी रहती थी, न जाने वह क्या सोचती रहती है ? बस के अड्डे पर कुछ लोग जमा हो गये थे, अब तो तीन बजकर पैंतालीस मिनट हो गये थे, ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता जा रहा था, उसे विश्वास होता जा रहा था कि कमल अब नहीं आयेगी। उसने अपनी दृष्टि इधर-उधर

दौड़ाई ताकि समय आसानी से कट सके। लोग क्यू में खड़े थे, लेकिन कुछ थके-माँदे से, कोई सुन्दर प्रसन्नचित चेहरा नज़र न आ रहा था, आकाश पर बादल और गहरे हो गये थे, कई दिनों से लगातार वर्षा हो रही थी, आज ही कुछ थमी थी। वह बस के अड्डे को छोड़कर एक तरफ़ को हो गया। एक बड़ी बिल्डिंग के पास हो गया। सामने एक चने वाला चने बेच रहा था, उसके निकट एक फल-विक्रेता फल बेच रहा था, और अड्डे के सामने दो बच्चे पेट पर हाथ मारकर भीख माँग रहे थे। जहाँ वह खड़ा था वहाँ से वह सामने वाली बड़ी घड़ी को अच्छी तरह देख सकता था, वहाँ से घड़ी की सूई की गति को अच्छी तरह देख सकता था। अब तो चार बजने में सिर्फ़ पाँच मिनट रह गये थे। अब उसे विश्वास हो गया था कि कमल नहीं आयेगी, वह यहाँ से कहाँ जाये ? शाम कहाँ और किधर गुज़ारे ? आज उसकी समझ में बहुत सी बातें थी, जो वह कमल से कहने वाला था; उसने सोच रखा था कि कमल आयेगी तो वह डेढ़ महीने का सारा क्रोध मिटा देगा, वह ऐसे प्यार व मुहब्बत का व्यवहार करेगा कि कमल की सारी अप्रसन्नता दूर हो जायेगी, वह उसे मना लेगा, कमल उसको कभी नहीं भूल सकती, वह उसे इतना चाहती है कि वह हमेशा उसकी रहेगी, उसके प्रेम के नशे में चूर रहेगी, इसलिये वह आयेगी। यह यथार्थ है कि इस डेढ़ माह के विलम्ब में वह कमल से बहुत कम बार मिल सका। उसका सबसे बड़ा कारण मूसलधार बारिश थी, बरसात का मौसम था, जो आदमी को घर से नहीं निकलने देता था। उसने अड्डे की तरफ़ देखा बस जा चुकी थी। अड्डा यात्रियों से ख़ाली पड़ा था, वह उसी बड़ी बिल्डिंग से होता हुआ फिर अड्डे के समीप आ गया। उसने एक अख़बार विक्रेता से शाम का अख़बार ख़रीदा और शीर्षक पढ़ने लगा। लेकिन उसका जी शीर्षकों पर न लगा, निगाहें किसी और का इन्तज़ार कर रही थीं; निगाहें किसी और को पढ़ना और देखना चाहती थीं। अब उसकी दृष्टि फिर बड़ी घड़ी पर पड़ी, चार बज चुके थे। उसका दिल कुछ बुझ-सा गया।

वह बीमार तो नहीं हो गई ? उसने अपने दिल को ढाढ़स देते हुए सोचा, अब और प्रतीक्षा करना केवल एक मूर्खता होगी। जिस दिन उन्होंने आज के मिलन का समय निश्चित किया था, उस दिन वह कुछ बीमार-सी थी, हल्का-सा जुकाम और खाँसी और कुछ बुखार-सा था। उसने कहा था—इसका तुम इलाज कराओ, वह कहने लगी—"कोई बात नहीं बरसात का मौसम है, ठीक हो जायेगा।" उस दिन उसने एक ढीली-सी कमीज़ पहनी हुई थी और उसका शरीर कुछ भरा-भरा सा मालूम पड़ता था, और वह कमल से काँपता-काँपता बातें कर रहा था, साथ वाले कमरे में उसका भाई बैठा था।

यह मुलाक़ात अल्प-सी थी, इस मुलाक़ात में कोई मिठास न थी। उसने कमल को देखना चाहा लेकिन कमल का रंग-ढंग कुछ इस प्रकार का था जैसे वह कह रही हो कि "अब तुम शीघ्र चले जाओ।"

उसने मिलन का समय ठहराया, वह उस कमरे से निकल आया था, उस मिलन के पश्चात् वह खुद उदास-सा हो गया था। आज अगर वह आ जाती तो वह कमल के सारे सन्देह दूर कर देता। आज की मुलाक़ात बहुत ही महत्व की थी। वह खाड़ी जो उन दोनों के मध्य बढ़ रही थी, शायद इस मुलाक़ात के बाद कम हो जाती। कमल ने अपना इरादा बदल तो नहीं लिया ? अगर कमल ने अपना इरादा बदल लिया होता, तो वह स्पष्ट कह देती कि मैं नहीं आऊँगी, उसे यहाँ बुलाने की क्या ज़रूरत थी ? कहीं उसने किसी और लड़के से प्रेम तो नहीं कर लिया। लेकिन कमल इस प्रकार की लड़की न थी, अगर उसे इस प्रकार की बात करनी होती तो वह ज़रूर उसे कह देती, और फिर उन दोनों के बीच बातों के आदान-प्रदान की पूरी स्वतन्त्रता भी तो थी। उसके दिल में तरह-तरह की मनोवृत्तियाँ भ्रमण करने लगीं, उन मक्खियों की तरह जो एक रिसते हुए घाव के इर्द-गिर्द मँडराती रहती हैं। चार बज चुके थे, घड़ी की सूई चार से आगे बढ़ चुकी थी, अब कमल नहीं आयेगी, उसके होंठ इस विचार के आते ही नीरस हो गये, सीना भारी-सा हो

गया, और गले में कम्पन-सी पैदा हुई। उसने सोचा अब उसे और प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये। अब वह क्या आयेगी, वह सचमुच उससे हमेशा के लिए रूठ गई है, अब एक बार उसने फिर बड़ी घड़ी की तरफ़ देखा, चार बजकर दस मिनट हो गये थे। वह वास्तव में उस अड्डे से जाना नहीं चाहता था, शायद वह आ जाये, उस अड्डे से उसकी बहुत-सी उम्मीदें बँध गई थीं, लेकिन अड्डा तो ख़ाली था, अड्डे के पीछे एक पुस्तक-विक्रेता किताबें बेच रहा था। उसने एक कदम उठाया, फिर कामना-भरी दृष्टि से अड्डे की ओर देखा, जैसे वह एक कब्र की तरफ़ कामना-भरी निगाहों से देख रहा हो, जैसे वह यह अनुभव कर रहा हो कि यहाँ मेरे प्रेम की असफलतायें और कामनायें दफ़न हैं और फिर उसने इच्छुक निगाहों से उस रास्ते को देखा, जिधर से बहुधा कमल आती थी। निगाहें धीरे-धीरे उस रास्ते की जाँच-पड़ताल करने लगीं, आज निगाहें अपनी प्रेयसी की प्रतीक्षा में बिछी जा रही थीं—प्रत्येक घुमाव व मोड़ से परिचित हो रही थीं, एक-एक ईंट और एक-एक कण को देख रही थीं, टटोल रहीं थीं। जब निगाहों ने रास्ते का पूरा मंडल घेर लिया तो अचानक रास्ते के उस मोड़ के समीप उसे कमल बढ़ती हुई दिखाई दी। उसके शुष्क होंठों पर आनन्द की लहर दौड़ गई; ऐसा अनुभव हुआ जैसे जहाज़ डूबते-डूबते बच गया हो, जैसे यात्री एक लम्बी यात्रा करके उद्दिष्ट स्थान पर पहुँच गया हो। वह कमल की तरफ़ अन्धे मनुष्य की तरह बढ़ा; खुशी का ठिकाना न रहा; कमल उसकी ओर आ रही थी।

वह उसके निकट चला गया।

"बहुत देर लगा दी तुमने ?" उसने हिचकिचाते हुए कहा।

कमल ने उसकी तरफ़ देखा और कुछ जवाब न दिया, कमल के चेहरे की प्रत्येक बनावट उसकी समझ में उतर गई। हाँ ! बिलकुल वही आँखें, काली स्याह आँखें, हाँ·· बड़ी-बड़ी आँखें, स्वच्छ और निर्मल आँखें, आँखें जैसे नीला आसमान, शान्तिपूर्ण आँखें, हाँ वही माथा,

लम्बा-चौड़ा और खुला हुआ, वही बाल थोड़े-थोड़े भूरे, कुछ-कुछ घुँघराले, वही सुराहीदार शरीर जो उसने कितनी बार देखा था। वह कुछ सोचने लगा कि तभी कमल ने कहा—

"कहाँ चलोगे ?"

"इसी होटल में।"

और दोनों उस होटल की तरफ़ चल दिये।

रास्ते में दोनों ने एक-दूसरे से बात नहीं की, वह सोच रहा था कि वह क्या बात करे ? लेकिन पहले होटल में जाकर चाय पी जाये, चाय पीने के बाद कमल का मूड ठीक हो जायेगा, आज वह कमल को हर बात बता देगा, अपने दिल का भेद उसके आगे कह देगा, और उससे हर बात पूछ लेगा, वह क्यों कई दिनों से उससे चुप-चुप-सी रहती है, क्यों वह उससे खुलकर बात नहीं करती ? उसकी आँखों में वह कोमलता क्यों नहीं ? वह उसे देख कर खुश क्यों नहीं होती ? उसके होंठों पर मुसक-राहट क्यों नहीं ?

वह अपने पुराने होटल के अन्दर पहुँचे, उसी पुरानी जगह पर एक मेज़ और तीन कुर्सियाँ। जब दोनों कुर्सियों पर बैठ गये तो बैरा आया।

कमल उसके बायीं ओर बैठी, वह हमेशा उसके बायीं ओर बैठा करती थी।

"क्या पियोगी ?" उसने कमल से पूछा।

"कुछ नहीं !" स्वर में कठोरता थी।

"कॉफ़ी ?"

"पेट ख़राब है।" उसने मुँह बनाते हुए कहा।

"क्या हुआ ?"

"गैस !" उसने आँखों को एक पल के लिये बन्द करते हुए कहा।

"चाय पी लो।"

"मैं चाय कभी नहीं पीती, यह तुम जानते हो।"

"और······?"

"बिलकुल नहीं।"

"अगर आप आज्ञा दें तो मँगवा लूँ।"

"क्या ?" कमल ने ज़रा चकित होकर पूछा।"

"थोड़ा सा संखिया।" उसने मूड को बदलते हुए कहा।

"वह आप ही खा लीजियेगा; आरोग्य के लिये अच्छा रहेगा।" कमल ने भड़क कर कहा।

"पेट ख़राब है तो सोडा मँगवाऊँ ?" उसने फिर मनाने की कोशिश की।

कमल ने सिर हिलाया जिसका यह आशय था कि अगर तुम हठ करते हो तो मँगवा लो।

बैरा चला गया था हमारी बातें सुनकर; उसको फिर बुलाया गया।

"एक स्पेशल चाय और एक सोडा ठण्डा।" उसने कमल की तरफ़ देखते हुए कहा।

"ठण्डा नहीं गरम; यानी बिना बर्फ़ के।"

बैरा चला गया।

उसने कमल की तरफ़ देखा, वह कुर्सी पर इस तरह बैठी हुई थी, जैसे अभी वह सूली पर चढ़ने वाली हो।

"ठीक तरह से बैठो।"

"मैं बिलकुल ठीक तरह से बैठी हुई हूँ।"

"तुम चुप क्यों हो ?"

"तबियत ठीक नहीं।"

"तुम तो इससे पहले बहुत बातें किया करती थीं और मैं प्रायः चुप रहा करता था। आज तुम चुप क्यों हो ? आज ही नहीं, बल्कि मैं गत डेढ़ माह से देख रहा हूँ कि तुम मौन रहती हो और मुझे तुमसे बातें

करनी पड़ती हैं।"

वह ख़ामोश रही।

कमरे में काफ़ी सन्नाटा था। निकट ही एक जोड़ा बैठा हुआ था, जो सिर-से-सिर मिलाकर कानाफूसियों में वार्तालाप किये जा रहा था। उसने फिर कमल की तरफ़ देखा। कमल की आकृति कुछ उदास, पीली मुरझाई-सी थी। उसके होंठ एक-दूसरे से मिले हुए थे और इस क़दर बिछे हुए थे, जैसे एक-दूसरे से सी दिये गये हों। उसकी आँखों में एक कठोरता-सी आ गई थी, जैसे प्यार और दया की जगह निर्दयता ने ले ली हो। मस्तक पर बल और गहरे हो गये थे, आँखों के नीचे गड्ढे पड़ गये थे, शायद रात-भर कमल को नींद नहीं आती। वह उससे क्या बात करे? क्या वह अपने प्रेम की बात करे? क्या वह उससे कहे कि उसकी आर्थिक दशा अभी तक नहीं सुधरी? क्या वह उसे कह दे—"कमल, मैं तुम्हें बहुत चाहता हूँ।" लेकिन यह अत्यन्त पुराना और निकम्मा वाक्य है, यह वाक्य हर आशिक अपनी प्रेयसी से कहता है, क्या वह कह दे कि "कमल मैं तुम्हें उम्र-भर न भूल सकूँगा, तुम्हारे प्यार ने मुझे जीवित रहने की उत्तेजना दी है, उसका कितना कृतज्ञ हूँ, तुम्हारे प्रेम ने मेरे सौंदर्य को निखारा है, अब निराशा की जगह खुशी ने ले ली है, मुझे तुम्हारी मुहब्बत ने दोबारा ज़िन्दा रहने पर बाध्य कर दिया है!" उसे कह दूँ, और क्या यह कहूँ कि रात-भर नींद भी नहीं आती है, लेकिन यह सब-कुछ झूठ होगा, उसे मालूम है, इन बातों से कमल पर कुछ प्रभाव न पड़ेगा, उसे इन बातों से कभी अनुराग न होगा।

इतने में सोडा और चाय आ गई।

कमल ने सोडे का गिलास अपनी तरफ़ कर लिया। उसने चाय की तश्तरी अपनी तरफ़ कर ली, आज वह जानता था कि कमल उसके लिये चाय नहीं बनायेगी।

"क्या तुम्हें अभी तक मुझसे मुहब्बत है?" उसने कमल को खुश करने का प्रयास किया।

कमल के होंठ एक क्षण के लिए काँप उठे, और फिर जम गये। उसे कुछ क्रोध आ गया।

"मुझे यह तुम्हारा फुलाया मुँह अच्छा नहीं लगता, तुम्हें क्या हो गया है ? तुम बात तक नहीं करतीं, अगर मुझे गुस्सा आ गया तो थप्पड़ मार कर बत्तीसों दाँत बाहर निकाल दूँगा।"

उसने यह वाक्य कठोर स्वर में कहा।

"मैं अब इस प्रकार की बात-चीत सुनना पसन्द नहीं करती।" कमल ने जल कर कहा।

जवाबी आक्रमण बड़ा कठोर था, लेकिन वह इस चोट को पी गया। उसने सोचा—यहाँ कठोरता से कोई लाभ न होगा।

उसने नम्रता की पॉलिसी धारण की।

उसने कमल की आँखों-में-आँखें डालने की कोशिश की, लेकिन कोई आशाजनक परिवर्तन न हुआ।

यह वार भी खाली गया।

वह सोडा पीने लगी।

वह चाय बनाने लगा और चाय बनाते हुए सोचने लगा—इस में सन्देह नहीं कि वह नहीं चाहता कि कमल उससे रूठ जाये।

उसने उस लड़की से वास्तव में मुहब्बत की थी, लेकिन दो माह से वह एक बहुत अद्भुत चक्कर में फँसा हुआ था, न वह अपने-आप से कुछ कह सकता था न इस लड़की से। वह इस अरसे में कमल से क्यों न मिल सका ? डेढ़ माह से क्यों अलग-अलग रहने लगा था ? वह क्यों उसी तेज़ी, उसी प्यार से कमल को न देख सका ? ऐसा हुआ तो क्यों हुआ ? क्या कमल को इस बात का ज्ञान हो गया है ? क्या वह कमल को सारी कहानी सुना दे ? अगर उसने यह सारी कहानी सुना दी तो कमल हमेशा के लिए उससे रूठ कर चली जायेगी, वह फिर मनाने की कोशिश करने लगा। सम्भवतः शुष्क होंठों पर एक पल के लिए मुसकराहट आ

जाये, और वह इस मुसकराहट से लाभ उठा सके।

"क्या मैं आपका हाथ अपने हाथ में ले सकता हूँ ?"

कमल ने विपत्तिजनक दृष्टि से उसकी तरफ़ देखा, जिसका यह आशय था कि "जी नहीं।" उसका आगे बढ़ा हुआ हाथ मेज़ पर धरा-का-धरा रह गया।

यह वार भी खाली गया।

उसने हारे हुए जुआरी की तरह पैंतरा बदला।

"एक अरसे से मैंने तुम्हारे होंठों को नहीं चूमा, क्या मैं एक चुम्बन ले सकता हूँ ?"

कमल के होंठ और अन्दर की तरफ़ भिच गये। दयालु निगाहों में और कठोरता और निर्दयता-सी आ गई। माथे के बल और गहरे हो गये और होठों के कोने सिकुड़ कर रह गये।

इसका अर्थ आप समझ गये होंगे, अगर आपने नई लड़की से मुहब्बत की है ···उसे आगे बढ़ने का साहस न हुआ।

वह इस लड़की को एक अरसे से जानता था, उसने कितनी बार इन होंठों को चूमा था, ये भरे-भरे-से होंठ, वह कितना इस लड़की के साथ बाहर गया था, इसके साथ घूमा था, उस वक्त जब कि उनकी मुहब्बत जवान थी, डेढ़ महीना ही तो हुआ होगा, वे शहर से बहुत दूर निकल जाते थे, अजीब व ग़रीब जगहों का उन्होंने पता लगाया था, जहाँ मुहब्बत की जा सकती है। वे एक बार तो शहर से बहुत दूर एक छोटी-सी पहाड़ी के ऊपर चढ़ गये थे। वे घनी झाड़ियों के बीच बैठ जाते थे, जहाँ उन्हें किसी का डर न रहता था। कितने सुन्दर थे वे क्षण ! जब मुहब्बत की स्पर्श-अग्नि से वे संध्यायें एक पल में गुज़र जाती थीं। उन दिनों उन दोनों के मध्य कोई दीवार बाधक न थी, उसने जो कुछ किया, कमल ने स्वीकार किया।

कमल ने कहा—"मैं तुमसे शादी करना चाहती हूँ।" और उसने कहा—"ठहर जाओ, मुझे एक फ़्लैट लेने दो। जहाँ मैं रहता हूँ कमल !

वहाँ मैं टाँगें फैलाकर सो नहीं सकता, तुम्हारा और हमारा बच्चा वहाँ कैसे सोयेगा ? वह कहती—तुम कोशिश नहीं करते ! वह कहता—मैं एक अरसे से इसी कोशिश में व्यस्त हूँ कि कहीं से मुझे दो कमरे का फ़्लैट मिल जाये, मेरी आर्थिक अवस्था ज़रा सुधर जाये तो तुम मेरे पास आकर रह सकती हो। वह कहती— मैं तुम पर बोझ बनकर न रहूँगी, मैं भी काम करूँगी, तुम भी काम करना। और यह कह कर वह निगाहें ऊपर कर लेती और फिर कहती—"हमारा बच्चा कितना खूबसूरत होगा, उसकी मुखाकृति और अंग तुम्हारे जैसा होगा, बुद्धिमानी मेरी जैसी होगी, मुझे माँ बनने की कितनी इच्छा है" और वह उसकी उभरी छातियों की तरफ़ देखने लगता, जो यथार्थ में बड़ी भरपूर और सुन्दर थीं। उसमें कितनी कोमलता और ममता थी! "मैं भी काम ढूँढ़ने की कोशिश करूँगी।" और यह कह कर वह निकट की झाड़ियों से एक खुशनुमा फूल तोड़ लेती और फिर भूरे-भूरे बालों में लटका लेती। उसने ज़िन्दगी में पहली बार एक ऐसी स्त्री से मुहब्बत की थी, जिसे सचमुच माँ बनने की इतनी तीव्र अभिलाषा थी, जिसे पति को पाने की इतनी इच्छा थी, जिसे एक घर बसाने की इतनी कामना थी, और वह स्वयं भी आयु के ऐसे अंश में पैर रख रहा था, जहाँ वह वास्तव में बाप बनना चाहता था। वह कमल से आयु में बड़ा भी था, वह चाहता था कि उसका एक बच्चा हो, इससे पूर्व उसकी इच्छा उसके सीने में यों कटार बनकर कभी न प्रकट हुई थी; बेटे के ख़याल ने इतना न सताया था। शायद उसके सिर के बाल सफ़ेद हो रहे थे, जिन्हें वह अपने काले बालों में छिपा कर रखता था, या सुबह उठकर वह अपने सफ़ेद बालों को नोच डालता था—"कमल ! बस एक फ़्लैट, सिर्फ दो कमरे का फ़्लैट और थोड़ी-सी आर्थिक दशा और सुधर जाय और तुम्हें कुछ काम मिल जाये......बस और कुछ नहीं चाहिये कमल, और कुछ नहीं चाहिये।" और वह खुश हो जाती। वह जानती थी कि फ़्लैट मिल जायगा, सिर्फ़ दो कमरे का फ़्लैट, और उन्हीं दो कमरों के फ़्लैट की खोज में वह जूहु

की तरफ़ निकल जाते ग्रौर संध्या में बढ़ते हुए सायों में समुद्र की सैर करते ग्रौर जब सूरज डूब जाता ग्रौर सारे समुद्र में ग्राग-सी लग जाती तो वे बैंगनी रंग मिश्रित संध्याकालीन ग्राकाश की लालिमा की मनोहरता से ग्रपने ग्रन्दर ग्राकर्षण पाते, कितनी बार इन्हीं संध्याग्रों ने रात का पहनावा पहनाया ग्रौर वे तट पर लेटे रहे।

चन्द्रमा ग्राकाश पर निकल ग्राता, ग्रौर ग्रपनी चाँदनी की ज्योति से इन्हें नहलाता ग्रौर ये दोनों गले लगाकर तट पर इकट्ठे लेट जाते, ग्रौर कमल कहती—"ग्राज तक उसने किसी मनुष्य से इस प्रकार का प्रेम नहीं किया।"

वह यथार्थ सच कहती थी। वह कहती थी—"ग्रब मुझे ग्रपना घर ग्रच्छा नहीं लगता; घर जाती हूँ तो तुम्हारी याद ग्राती है; तुम्हारी बातें याद ग्राती हैं; तुम मुझे कभी छोड़कर मत जाना।" इन बातों के पीछे सचमुच एक निष्ठा भरी हुई प्रबल इच्छा थी; सम्पन्नता थी। कमल उसके मस्तक को चूमती ग्रौर वह कमल की सुराहीदार गर्दन को, जहाँ एक नीली-सी रग फड़फड़ाती, ग्रौर वह कहता—"तुम्हारी गर्दन कितनी मरमरी है।"

"मरमरी क्या?" वह चौंक कर पूछती।

"यानी कोमल।"

वह फिर हँस देती।

ग्रौर वह उसके बालों से खेलने लगता।

इस प्रकार वे संध्यायें बीत गईं, इस परीक्षा में कि कहीं से फ़्लैट मिल जाये, दो कमरे का फ़्लैट, ग्रार्थिक दशा ज़रा-सी सुधर जाये। ग्रौर ग्रब कमल उसके सामने बैठी हुई थी बिलकुल एक ग्रजनबी लड़की की तरह, जैसे वह इसके सम्बन्ध में कुछ नहीं जानती। यह कैसे ग्रौर क्यों हो गया? उसने फिर कमल की तरफ़ देखा, वह सोडा पी चुकी थी। उसकी चाय की प्याली के ग्रन्तिम बूँद काँप रहे थे।

उसने सोचा—क्या इन निगाहों में ग्रब कोमलता न ग्रायेगी?

लेकिन वे नेत्र उसी प्रकार उसकी ओर देख रहे थे। शरीर में वही तनाव था, कुर्सी पर उसी तरह अकड़ कर बैठी हुई थी, कोई नर्मी न थी, कोई लचक न थी, वह कमल से क्या कहे ? क्या कमल ने उसे दूसरी लड़की के साथ घूमते हुए देख लिया था और फिर यह रंग-ढंग पकड़ा था, अगर देख लिया तो वह उससे पूछ सकती है, लेकिन वह क्यों पूछे ? तुम ही क्यों नहीं बता देते ?

वह सोचने लगा—

लेकिन उसे कुछ और शंका उत्पन्न हुई,—कमल को दूसरे लड़के से प्रेम तो नहीं हो गया, इसलिये उसने कहा—"क्या तुम्हें किसी और लड़के से प्रेम हो गया है कमल ?"

कमल के होंठों पर एक हल्की मुसकान प्रकट हुई और उसने सोचा—सचमुच उसे दूसरे लड़के से प्रेम हो गया है, उस लड़के के पास ज़रूर दो कमरे का फ़्लैट होगा, ज़रूर एक अच्छा पद प्राप्त करने वाला होगा, तभी तो यह मुसकान होंठों पर आ गई; इसीलिये शायद कमल ने मौन-व्रत धारण कर लिया है; अब उसने असली रहस्य को पा लिया है।

दूसरे क्षण वह मुसकान एक घृणित भाव में परिवर्तित हो गई, और वह कहने लगी—"क्या तुम मुहब्बत को इतनी सस्ती और चीप समझते हो ? क्या तुम यह समझते हो कि मैं जब कभी घर से बाहर निकलती हूँ तो लड़कों की तलाश मे निकलती हूँ ? क्या तुम समझते हो कि अगर तुम से लड़ाई हो गई तो मैं फ़ौरन दूसरे आदमी से इश्क करने लगूँगी ? तुम मुझे क्या समझते हो ?"

यह कह कर वह चुप हो गई। एक क्षण के लिये वह स्तम्भित हो गया। उसने देखा कि कमल के नाक के नथुने क्रोध से फूल गये थे, होंठ कंप-कंपा रहे थे, और छाती के उतार-चढ़ाव से मालूम होता था कि अभी अग्निवर्षक पहाड़ फूट पड़ेगा और हर वस्तु को कूड़ा-करकट की तरह भस्मीभूत करता हुआ बहा कर ले जायगा। लेकिन कमल ने अपने

ऊपर नियंत्रण पा लिया । न जाने कैसे उसकी आँखों में एक हल्की-सी आर्द्रता आ गई, उसने सोचा—अब कमल रोयेगी, वह ज़रूर रोयेगी, उसकी आँखों से आँसू बह निकलेंगे, और उसे अवसर मिल जायेगा कि वह मुहब्बत को नये सिरे से ज़िन्दा कर सके । वह उसे चुप करायेगा, वह अपने होठों से उन आँसुओं को पोंछ डालेगा, जो उसके गालों पर बह निकलेंगे, लेकिन वह क्षण व्यतीत हो गया; नाक के नथुनों ने फड़-फड़ाना छोड़ दिया और होंठ फिर अपनी जगह पर आ गये और इस तरह एक-दूसरे से जुड़ गये, जैसे कार्क बोतल में फ़िट होकर रह जाता है।

उसने सोचा—कमल को मालूम हो गया है कि वह इसी बीच में एक दूसरी लड़की के साथ घूमता रहा है, लेकिन क्यों ? यह शायद उसे मालूम नहीं । अगर कमल ने उसको नहीं देखा तो कम-से-कम इन बातों का अनुभव अवश्य कर लिया है, इसीलिये उसका रंग-ढंग इस प्रकार का है ।

"वह देखो, बस आ रही है ।" सोडा ख़त्म हो गया था ।

"मैं तुम्हारे हाथ अपने हाथ में लेना चाहता हूँ ?" उसने कमल को प्यार-भरे लहज़े में कहा—उस समय वह वास्तव में चाहता था कि कमल रूठ कर न जाये, वह यथार्थ में चाहता था कि कमल के हाथ को अपने हाथ में रख ले, वह सचमुच चाहता था कि वह एक बार फिर चाय का आर्डर दे और कमल अपने हाथों से उसे चाय बना कर दे, उससे हँस-हँस कर बातें करे और वह चाय पीता रहे और उससे कहे कि उसे जल्द ही दो कमरे का फ़्लैट मिल जायेगा; लेकिन वह जानता था कि वह इस प्रकार की चेष्टा न कर सकेगा ।

"कमल अपना हाथ इधर लाओ ।"

"तुम मुझे छू नहीं सकते ! समय अधिक हो गया है, मैं यहाँ से जाना चाहती हूँ ।" कमल ने भड़क कर कहा ।

"मैं वादा करता हूँ कि मैं तुम्हें हाथ नहीं लगाऊँगा, ज़रा छुओ

तो सही।"

"तुम बैरे को बुलाओ।"

कमल ने बटन दबा दिया, घंटी बजी, बैरा आया।

बैरे ने बिल दिया।

"कुल आठ आने।"

उसने बिल अदा किया, बैरा पैसे लेकर चल दिया।

"अब चलो।" कमल ने उसकी तरफ़ देखकर कहा।

"एक बात बतला कर जाओ और वह यह है कि तुम मुझसे नाराज़ क्यों हो?"

"मैं तुम से नाराज़ नहीं हूँ, मैं किसी से नाराज़ नहीं हूँ, मैं नाराज़ होकर क्या कर लूँगी।"

"क्या मैंने तुम्हारी मुहब्बत का अनुचित लाभ उठाया? क्या तुम यह समझती हो कि मैं आज तक तुम्हें धोखा देता रहा हूँ?"

"मैंने ये बातें कभी नहीं सोचीं, मैंने यह कभी नहीं कहा कि तुमने मुझे धोखा दिया; जो कुछ मैंने कहा वह मैं जानती हूँ, और उसका मुझे पश्चात्ताप नहीं है; लेकिन आज से मैं सौगंध खाकर कहती हूँ कि मैं किसी पुरुष से बात नहीं करूँगी।" कमल ने वज्रपात की-सी दृष्टि से देख कर कहा।

उसे वास्तव में उसकी क्रिया का ज्ञान हो गया है, अब कहने से क्या लाभ? उसने अवश्य उसे किसी दूसरी लड़की के साथ घूमते देख लिया होगा, तभी उसका व्यवहार इस प्रकार का है।

"उठो चलें।"

"जाने से पहले एक बात बताती जाओ।"

"क्या?"

"क्या तुम्हें नौकरी मिली?"

"नहीं!"

इस 'नहीं' में जीवन की सारी आशायें निराशा के रूपमें सिमट कर

रह गई थीं ।

"तुम जा रही हो ?"

वह खड़ी हो गई। कमल जा रही थी फिर भी उसे विश्वास न आता था कि वह सचमुच जा रही थी ।

यह स्त्री ! यह लड़की ! यह तो उसकी प्रेयसी थी । डेढ़ मास पूर्व सब-कुछ उसका था । इस लड़की ने हँस-हँस कर बातें की थीं, इस लड़की ने उसके बालों को चूमा था, उसकी आँखों की बड़ाई की थी, उसकी साँस को अपने अन्दर सोख लिया था, उसके शरीर से गर्मी हासिल की थी, उसकी आत्मा को अपनाया था, आज उसे क्या हो गया ? आज वह एक लोहे की छड़ की तरह क्यों कठोर और पथरीली हो गई ? वह लचक और कोमलता कहाँ गई ? सिर्फ़ डेढ़ महीने के अन्दर ही यह लड़की उस के लिये एक अजनबी बन गई ! और यह लड़की अब उसको नहीं जानती थी। यह जानते हुए कि वे दोनों बरसों से एक-दूसरे को जानते हैं, एक-दूसरे के प्रत्यक्ष खड़े हैं, वह क्या कहे, उससे किस तरह कह दे, वह किस तरह समझाये कि उसने हज़ार बार कोशिश की कि दो कमरे का फ़्लैट ले सके, लेकिन वह आज तक न ले सका; उसने अपनी एड़ियाँ रगड़ लीं, कि उसकी आर्थिक दशा सुधर जाये लेकिन वह पहले से निकृष्ट होती गई, और जब उसे विश्वास हो गया कि अब वह सारी आयु बाप ने बन सकेगा तो उसने एक लड़की के साथ घूमना आरम्भ कर दिया, अपनी लज्जा को छिपाने के लिये, अपने विफल मनोरथ और पराजय पर पर्दा डालने के लिये। वह उसे कैसे बता दे, जब मनुष्य पराजित हो जाता है तो अपनी झूठी-मूठी बातों में आनन्द लेता है, इसमें उसका कोई अपराध नहीं। वह अभी तक उसे चाहता है, लेकिन चाहने से क्या होता है, वह दूसरी लड़की जो तुम्हारे साथ है, उसका क्या होगा ? तुम्हारा क्या होगा ? इस ज़िन्दगी का क्या होगा ?

× × ×

दोनों होटल से बाहर निकले ।

आकाश पर बादल और घने हो गये थे और हल्की-हल्की फुहार-सी पड़ रही थी । लोग पंक्ति बाँध रहे थे । मोटरें और बसें उसी तरह दौड़ रही थीं। फुटपाथ पर लोग उसी तरह चल रहे थे। ज़िन्दगी उसी तरह प्रवाहित थी ।

बस के अड्डे पर कमल खड़ी हो गई ।

"क्या मैं तुम्हारे साथ चल सकता हूँ ?" उसने कहा ।

"मुझे एक जगह ज़रूरी जाना है ।"

"क्या मैं तुम्हारे घर आ सकता हूँ ? अगर तुम…… ।"

उसके बाद वह चुप हो गया ।

"अवश्य आ सकते हो ।" उसने होंठों को सिकोड़ते हुए कहा, इतने में बस आ गई और वह दौड़ कर बैठ गई ।

वह जा रही है, उसने सोचा—वह चली गई है, दिल ने कहा—"वह उसी से मिलने जा सकता है, लेकिन वह किससे मिले । कमल से या अजनबी लड़की से जिसे वह नहीं जानता ।"

डैड--लैटर

ख़्वाजा अहमद अब्बास

"डार्लिंग !"

"जी ?"

"प्रशाद्ज़ ने आज शाम को ब्रिज और खाने के लिए बुलाया है। याद है न ?"

"जी।"

"तो मैं आफ़िस से साढ़े पाँच बजे तक आ जाऊँगा। तुम तैयार रहना।"

जी ! जी !! जी !!! बारह वर्ष से वह यह एक-अक्षरी शब्द अपनी पत्नी की ज़बान से सुन रहा था। दस बातों में से नौ का जवाब वह केवल 'जी' से देती थी, जैसे पढ़ाया हुआ तोता केवल एक शब्द बोल सकता हो। जी ! जी !! जी !!!

सुधीर सक्सेना, आई०सी०एस०डिप्टी कमिश्नर ज़िला नारायणगंज, के बारे में हर एक की राय थी कि दुनिया में उससे बढ़ कर सौभाग्य-शाली कोई न होगा। ऊँचा ओहदा, अच्छा वेतन, रहने के लिए आराम-देह मकान, विमला-जैसी व्यवस्था-पसन्द और पढ़ी-लिखी पत्नी जो कमिश्नर साहब के साथ ब्रिज खेल सकती थी, राजा साहब रामनगर के साथ डाँस कर सकती थी, तीन सुन्दर और चतुर बच्चों की माँ थी। सबसे बड़ा रणधीर, जो दस वर्ष की उम्र ही में नैनीताल के एक अंग्रेज़ी स्कूल में जूनियर केम्ब्रिज में पढ़ रहा था और अपनी क्लास की क्रिकेट-टीम का कप्तान था और बिलकुल एंग्लो-इण्डियन लड़कों की तरह अंग्रेज़ी

में बातचीत कर सकता था। इससे छोटी सात-वर्षीया उषा, जो माँ की तरह दुबली-पतली, नाजुक-बदन थी और वैसी ही बड़ी-बड़ी आँखें और वैसे ही सुनहरे बाल थे; वह नारायणगंज के ही एक कॉन्वेन्ट स्कूल में थर्ड-स्टैंडर्ड में पढ़ रही थी और उसे सारे नर्सरी-राइम्स ज़बानी याद थे और "ट्विकल ट्विकल लिटल स्टार" जैसी कविताएँ तो वह फ़र्राटे से गाकर सुना सकती थी। और फिर सबसे छोटी शान्ति, जो अभी मुश्किल से तीन वर्ष की थी और 'बेबी' कहलाती थी और माता-पिता दोनों की आँख का तारा थी; और बड़े प्यार-अन्दाज से तुतला-तुतला कर "डेडी टा-टा" या "ममी बाई-बाई" कहना सीख रही थी।

हाँ, तो सभी सुधीर सक्सेना आई०सी०एस० को सबसे सौभाग्यशाली समझते थे। और कभी-कभी वह खुद भी यही समझता था। जो कुछ उसे हासिल था उससे अधिक जीवन में कोई किस चीज़ की आशा कर सकता है? मगर फिर वह अपनी पत्नी की ज़बान से यह एक-अक्षरी शब्द 'जी' सुनता—विमला के फीके, बेरंग, थके हुए अन्दाज़ में—और उसकी खुशी और खुश-किस्मती दोनों पर सन्देह और एक हद तक निराशा के बादल छा जाते।

"जी!"

कब से यह शब्द उसके जीवन में गूँज रहा था; एक महीना हुआ, इंगलिस्तान से आया था और नियुक्त होने से पहले कुछ सप्ताह छुट्टी मनाने आया हुआ था। मसूरी खाते-पीते घरानों की सुन्दर सुसज्जित और दिलचस्प लड़कियों से भरा हुआ था। लाइब्रेरी के सामने हर शाम को लहराती हुई रंगीन साड़ियों, चुस्त कमीज़ों, रेशमी शलवारों और गले में झूलते हुए दुपट्टों की नुमाइश होती थी। ऊँची एड़ी के जूतों पर इठलाती हुई चाल, निडर निगाहें, शोख़ जवानियाँ, बाँकी चितवनें, रँगे हुए होंठ, मोचने से बारीक की हुई भवें, पाउडर से दमकते हुए गाल, पर्म किए हुए बाल''' हर नौजवान को दृश्य देखने की खुली दावत थी। मगर न जाने क्यों सुधीर को सारे मंसूरी में सूरत पसन्द आई तो सिर्फ़ एक

विमला की, जिससे पहली बार उसकी भेंट 'हेकमेन्स' होटल में एक शाम को 'टी-डाँस' के दौरान में हुई थी।

"हलो सुधीर !" उसके पटना के मित्र माथुर ने उसे हाथ से इशारा करके अपनी मेज़ की तरफ़ बुलाते हुए कहा था—"यहाँ आओ यार, और इनसे मिलो। आप हैं विमला बैनर्जी। हैं बंगाली मगर लखनऊ में पली हैं। वहीं कॉलिज में पढ़ती हैं।"

सुधीर ने देखा कि बगैर पाउडर के गोरे-गोरे चेहरे पर दो बड़ी-बड़ी आँखें हैं जिनकी गहराई में कोई दुःख डूबा हुआ है और उनके गिर्द काले गड्ढे हैं और लम्बी नुकीली शर्मीली पलकें हैं जो रातों को जागे हुए पपोटों के बोझ से झुकी जा रही हैं।

वह माथुर के अनुरोध की प्रतीक्षा किये बिना ही विमला के पास की कुरसी पर बैठ गया और फिर उसके लिए उस खचाखच भरे हुए बाल-रूम में विमला के सिवा और कोई न था।

बारह बरस के बाद भी, उनकी वह सबसे पहली बातचीत आज तक उसकी याद में ताज़ा थी।

"तो आप आई० टी० कालिज में पढ़ती होंगी ?"

"जी"

"बी० ए० में ?"

"जी।"

"अगले साल फ़ाइनल की परीक्षा देंगी ?"

"जी।"

दो वर्ष तक अंग्रेज़ स्त्रियों का कर्कश मर्दाना स्वर सुनने और दो सप्ताह मंसूरी की चीख़-पुकार में गुज़रने के बाद कितनी शान्ति थी विमला के कम बोलने में ! जैसे आँधी और तूफ़ान और कड़क-चमक के बाद वर्षा थम गई हो और गुलाब की पंखड़ियों पर से कुछ नन्ही-नन्ही बूँदें घास पर टपक रही हों। कितनी भारतीयता थी उस 'जी' में। कितनी कोमलता और मिठास ! कितनी पवित्रता और लाज !

"आप डाँस करती हैं ?"

"जी नहीं।"

उनके मित्र नाचने वालों की भीड़ में खो गये थे, और अब वे दोनों अपनी मेज़ पर अकेले थे। सुधीर ने सोचा, अन्त में मेरी तलाश आज समाप्त हो गई। विमला से अच्छी पत्नी मुझे मिल नहीं सकती। वह सुन्दर है, मगर शुक्र है शोख़ तितली नहीं जो एक फूल से दूसरे फूल पर भटकती फिरे। पढ़ी-लिखी है, मगर अपनी राय की पक्की और ज़बान की तेज़ नहीं है। खाते-पीते घराने की मालूम होती है, मगर इतनी अमीर भी नहीं है कि एक आई० सी० एस० के प्रस्ताव को ठुकरा दे। उससे शादी करके इनसान सचमुच सुख और शान्ति का जीवन व्यतीत कर सकता है।

और उसने कहा, "तो आपके पिता ......?"

"वह लखनऊ में रहते हैं। आर्ट स्कूल में पढ़ाते हैं।"

"ओह, आप आर्टिस्ट बैनर्जी की बेटी हैं। उनके चित्रों की प्रदर्शिनी तो हमारे पटना में भी हो चुकी है।" और फिर उसने सफ़ाई से झूठ बोला—"मुझे उनकी तस्वीरें बहुत पसन्द आई थीं।" यद्यपि उस समय उसने सोचा था कि न जाने इन टेढ़ी-मेढ़ी लकीरों, नीले-पीले रंग के धब्बों में क्या धरा है जो लोग उनकी इतनी प्रशंसा करते हैं। मगर इसी क्षण उसे उन चित्रों में से एक विशेष चित्र याद आया। एक ग्यारह वर्षीय चंचल-चपल बच्ची का चित्र जो साबुन घुले हुए पानी के रंगीन बुलबुले उड़ा रही थी। चित्र का नाम था—'बुलबुले'।

"वह चित्र 'बुलबुले' आपका ही था न ?"

"जी।"

"उसमें आप बहुत चंचल मालूम होती थीं। अब तो आप कितनी सीरियस हो गई हैं।"

सिर्फ़ इस बार उसने 'जी' कहकर जवाब नहीं दिया। एक अजीब-सी, थकी हुई, बुझी हुई-सी मुसकराहट के साथ बोली—"बुलबुले की

ज़िन्दगी भी कितनी होती है। हवा का एक हल्का-सा झोंका भी आया और बुलबुला टूट गया। बस ख़त्म···"

जब तक वह मंसूरी रहा, उसका अधिकतर समय विमला की मुहब्बत में गुज़रा। इकट्ठे वे चंडाल चोटी तक चढ़े, कैम्प्टी फ़ॉल देखने गए।

इन तमाम दिनों में विमला ने मुश्किल से एक दर्जन वाक्य उससे कहे होंगे। सुधीर की बातों को वह बड़ी ख़ामोशी और एकाग्रता से सुनती। जब तक वह सीधा सवाल न करता, वह किसी बात पर भी अपनी राय न देती। मगर सुधीर को विमला के कम बोलने से कोई शिकायत न थी। बातूनी लड़कियाँ जो संसार के हर सवाल पर राय रखती हैं और उसको व्यक्त करना आवश्यक समझती हैं, उसे बिलकुल पसन्द न थीं। उसे तो यही अच्छा लगता था कि वह बोलता जाए और विमला बैठी सुनती रहे और 'जी-जी' करती रहे। जब सुधीरको विश्वास हो गया कि वह विमला को बहुत पसन्द करने लगा है बल्कि शायद उससे प्रेम भी करने लगा है तो एक दिन एकांत में अवसर पाकर उसने 'प्रपोज़' कर ही डाला।

"विमला, तुम्हें मालूम है न कि मैं तुम्हें बहुत पसन्द करने लगा हूँ ?"

"जी।"

"तुम्हारे बिना मैं नहीं रह सकता। क्या तुम मुझसे शादी करोगी ?"

"जी।" इस 'जी' में सवाल भी था, और जवाब भी।

थोड़ी देर की ख़ामोशी के बाद वह बोली—"देखिए, मैं आपका बहुत आदर करती हूँ। इसीलिए मैं आपको धोखा नहीं देना चाहती। मैं आप से प्रेम नहीं करती।"

"क्या तुम किसी और से प्रेम करती हो ?"

विमला की ज़बान से 'जी नहीं' भी कभी ही निकलता था। मगर इस बार उसने कहा, "जी नहीं।" और फिर एक क्षण की ख़ामोशी के

बाद, जिसमें गहरी ठंडी साँस का समावेश था—"ऐसा कोई नहीं है।"

सुधीर को विश्वास हो गया। उसने कहा, "तो फिर कोई हर्ज नहीं। मैं तुम्हें अपने से प्रेम करना सिखा दूँगा।"

उस दिन जुलाई १९४० की १४ तारीख़ थी।

नौकर ने डाक का पुलिन्दा लाकर सुधीर के सामने रखा। सबसे पहली ही चिट्ठी जो उसने खोलने के लिए उठाई तो उसकी नज़र डाक-खाने की मुहर पर पड़ी—"नारायणगंज—१४, जुलाई, १९५२।" एक क्षण में सुधीर की याद में बारह बरस पहले का वह दिन चौंक कर ज़िंदा हो गया।

लिफ़ाफ़े को छुरी से खोलते हुए सुधीर ने विमला से पूछा, "जानती हो, आज क्या तारीख़ है ?"

"जी"; और उसकी दृष्टि सामने की दीवार पर लगे हुए कैलेंडर पर गई।

"बारह वर्ष पहले का वह दिन याद है मसूरी में—जब मैंने तुम्हें 'प्रपोज़' किया था ?"

"जी"; मगर इस 'जी' में केवल स्वीकृति थी, प्रफुल्लता नहीं थी।

सुधीर बारह वर्ष पहले की जिस राख को कुरेदना चाहता था, वह बिलकुल ठंडी थी। ऐसा लगता था कि उसमें कभीकभी कोई चिनगारी न थी।

मगर सुधीर ने विमला के चेहरे पर एक रंग जाते और दूसरा आते नहीं देखा। वह पत्र खोल कर पढ़ रहा था जो उसके कालेज के पुराने और बेतकल्लुफ़ दोस्त माथुर के पास से आया था, जो अब पटना में वका-लत करता था। पत्र पर नज़र डालते ही सुधीर मुसकरा दिया क्योंकि माथुर ने लिखा था—"यार, तुम कितने खुशकिस्मत हो। विमला जैसी पत्नी पाई है। भैया हमें दुआ दो कि उस दिन 'हेकमेन्स' में तुम्हारी भेंट उससे कराई। मगर इस दुनिया में कौन किसी का अहसान मानता है।"

"सुना तुमने, माथुर ने क्या लिखा है ?"

"जी ?"

सुधीर ने विमला के विषय मे जो वाक्य माथुर ने लिखे थे, वे पढ-कर सुनाए और फिर दूसरे पत्रो को खोलकर पढने मे व्यस्त हो गया। और उसने यह नही देखा कि माथुर के दोस्ताना मजाक को सुन कर विमला की आँखो मे कोई चमक पैदा नही हुई। केवल होंठो पर एक कडवी-सी मुसकराहट का तनाव पैदा हुआ और फिर एकाएक गायब हो गया।

दूसरा पत्र जो सुधीर ने खोला, वह क्लब का बिल था। वह उसने विमला की तरफ बढा दिया क्योकि बिलो का भुगतान वही करती थी। तीसरा पत्र आई० सी० एस० एसोसिएशन से आया था, वार्षिकोत्सव और चुनाव के विषय मे।

"सुना विमला, तुमने ? इस साल बलदेव और अहसान वगैरह सेक्रे-टरी के लिए मेरा नाम 'प्रपोज' करना चाहते है ?"

"जी।"

चौथा पत्र—मगर यह उसके नाम नही, विमला के नाम था। एक मोटा मगर पीला पुराना-सा लिफाफा जिस पर कितनी ही मोहरें लगी हुई थी और कई बार पते मे काट-छाँट की हुई थी। और यह क्या ? मिस विमला बैनर्जी, यह कौन बदतमीज है, जो मिसेज विमला सक्सेना को शादी के बारह वर्ष बाद भी 'मिस' लिखता है ? ··सुधीर ने एक नजर विमला की ओर देखा जो उस समय नौकर को दोपहर के खाने के बारे मे हिदायते देने मे व्य त थी। यह इतमीनान करने के बाद कि विमला ने अपना पत्र नही पहचाना था, सुधीर ने सामने चायदान रखकर, लिफाफा खोला। शादी के बाद कई वर्ष तक उसने विमला के नाम आये हुए कितने ही पत्र चुपके-चुपके खोल कर पढे थे। मगर सिवाय कालिज की सहेलियो या रिश्ते की बहनो वगैरह के कोई सन्देहा-त्मक पत्र न मिला था। मगर न जाने क्यो इस पत्र के लिफाफे ही से

मालूम होता था कि उसमें कोई पुराना भेद ज़रूर है। शायद आज उसे मालूम हो सके कि इस 'जी' की उकताहट और बे-दिली के पीछे कौन-सी चीज़ छिपी हुई है ?

लिफ़ाफ़े में से कई पृष्ठों का लम्बा पत्र निकला। मगर उसकी पहली कुछ पंक्तियाँ ही सुधीर की शान्ति को सदा के लिए भंग करने के लिए पर्याप्त थीं। लिखा था :—

> जान से ज़्यादा प्यारी विमला !
>
> तुमसे मिले दो महीने हो चुके हैं, और मेरे लिये ये महीने दो बरस से भी अधिक लम्बे हैं। क्या हम सदा इस तरह छिप-छिप कर ही मिल सकेंगे ? यह दीवार जो हमारे बीच खड़ी है, क्या कभी ढाई न जा सकेगी .... ?

क्रोध और घृणा के जोश से सुधीर के हाथ काँप रहे थे। इससे आगे उससे यह पत्र न पढ़ा गया—यह पत्र जो उसकी पत्नी की बद-चलनी का घोषणा-पत्र था। जल्दी-जल्दी पृष्ठ उलट कर उसने अन्तिम पृष्ठ पर नज़र डाली। पत्र की समाप्ति पर लिखा था—"सदा-सदा के लिये तुम्हारा—अनिल।"

अनिल ! उसके मस्तिष्क में यह अनजाना नाम एक बम के गोले की तरह फटा।

"विमला !" वह चिल्लाया। और विमला, जो उस समय कमरे के बाहर जाने वाली थी, ठिठक कर दरवाजे के पास रुक गई।

"जी !"

जी ! जी !! जी !!! वही मुलायम, ठंडा, फीका 'जी'..... और इस समय सुधीर को ऐसा लगा जैसे यह छोटा-सा शब्द एक ताना हो, एक गन्दी गाली हो, एक तमाचा हो जो उसकी पत्नी ने उसके मुँह पर दे मारा हो—

"जी !"

"अनिल कौन है ?"

सुधीर ने यह प्रश्न इतना अचानक किया कि कुछ क्षण तक विमला भौंचक्की खड़ी रही, जैसे समझी ही न हो कि उससे क्या पूछा गया है ? मगर फिर जैसे धीरे-धीरे सूर्य पर से बादल हट जाते हैं और बरसात की भीगी धूप ज़मीन पर फैल जाती है, इसी तरह एक धीमी मीठी नर्म मुसकराहट उसके चेहरे पर खेल गई।

"अनिल ?" उसने नर्म आवाज़ में नाम दोहराया—जैसे माँ बच्चे का नाम लेती है, जैसे भक्त भगवान् का नाम लेता है, जैसे कवि अपनी प्यारी कविता गुनगुनाता है...और उसकी आँखें एक नये प्रकाश से चमक उठीं—वह प्रकाश जो बारह वर्ष तक सुधीर ने कभी अपनी पत्नी की आँखों में नहीं देखा था।

"हाँ, हाँ, अनिल ? कौन है वह ?" विमला की आँखों में उस नए प्रकाश को देखकर, सुधीर आपे से बाहर हो रहा था।

मगर विमला किसी दूसरी ही दुनिया में थी, उसकी आँखें दूर—बहुत दूर न जाने क्या देख रही थीं कोई बहुत सुन्दर दृश्य ! कोई दिल-कश याद !! आशा की कोई किरण !!!

'वह सब कुछ है।' उसके मुसकराते होंठों ने सुधीर से नहीं बल्कि दुनिया से कहा, फिर उन होंठों की मुसकराहट बुझ गई और उन पर एक कड़वा व्यंग्य उभर आया, 'और अब वह कुछ नहीं हैं।' फिर किसी अज्ञात दुःख के बोझ से उसकी गरदन झुक गई।

"पहेलियाँ मत बुझाओ !" सुधीर चिल्लाया। उसका जी चाहता था कि मेज़ को उलट दे, इन तमाम चीनी के बर्तनों को चकना-चूर कर दे, चायदानी को उठा कर विमला के सिर पर दे मारे; "सच-सच बताओ क्या तुम उससे प्रेम करती हो ?"

झुकी हुई गरदन फिर उठ गई, आँखों के डब-डबाते आँसुओं में से फिर वह प्रकाश झलकने लगा। फीके और बेरंग अंदाज़ में केवल 'जी' कहने वाली विमला ने सगर्व सिर उठा कर सुधीर की आँखों-में-आँखें

डाल दीं, बोली—"जी हाँ, आपका खयाल ठीक है।"

और उस क्षण सुधीर की दुनिया एकाएक अन्धेरी हो गई। उसे ऐसा लगा जैसे विमला ने उसकी इज़्ज़त पर, उसकी आई० सी० एस० की शान पर, उसकी पौरुषता पर सदा के लिए कालिख पोत दी हो। उसे ऐसा महसूस हुआ जैसे विमला ने उसे ऐसी गन्दी गाली दी है जो उम्र-भर उसके कानों में गूँजती रहेगी। उस समय शिक्षा, संस्कृति और सभ्यता के सब छिलके उस पर से उतर गये। अब वह लन्दन का पढ़ा हुआ बैरिस्टर नहीं था, आई० सी० एस० एसोसिएशन का होने वाला सेक्रेटरी नहीं था, क्लब का लोकप्रिय सदस्य नहीं था, नारायणगंज ज़िले का डिप्टी कमिश्नर नहीं था। जिसकी मुट्ठी में एक लाख से ज्यादा इनसानों की किस्मत थी, इस समय वह केवल एक नंगा वहशी था, गुस्से और जोश में आया हुआ एक मर्द जिसकी औरत ने उसे धोखा दिया था।

वहशी चिल्लाया—"निकल जाओ इस घर से! इसी वक्त!! इसी दम!!"

विमला के चेहरे पर न क्रोध के चिन्ह पैदा हुए, न दुःख के। वह अब भी किसी दूसरी ही दुनिया में थी। उसने सुधीर की चीख को ऐसे सुना जैसे बहुत दूर से कोई धीमी-सी आवाज आई हो। और एक बार फिर उसके होंठ एक मासूम-सी मुसकराहट से खिल गए—जैसे भटके हुए यात्री को बड़ी तलाश के बाद रास्ता मिल जाए, जैसे वह देर से, बारह वर्ष से इस घड़ी की प्रतीक्षा कर रही थी और अन्त में वह शुभ घड़ी आन पहुँची।

उसने कोई उत्तर नहीं दिया, केवल एक नजर अपने पति की तरफ़ देखा। इस नज़र में शिकायत नहीं थी, दया थी; क्षमा थी; जैसे उसकी आँखें कह रही हों—"इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है, तुम इन बातों को नहीं समझोगे।" फिर अपने बैड-रूम में गई और वहाँ से अपनी छोटी बच्ची को गोद में लेकर बरामदे में से होती हुई बाहर निकल गई। उसके कदमों की आवाज़ दूर होती गई। यहाँ तक कि बाहर सड़क

के शोर में हमेशा के लिए खो गई।

सुधीर का विचार था कि वह रोयेगी, गिड़गिड़ायेगी, अपने गुनाह की माफ़ी माँगेगी, भविष्य में अपने चरित्र को ठीक रखने का वादा करेगी; लेकिन वह इसके लिए तैयार नहीं था कि विमला सचमुच घर छोड़कर चली जायेगी। इस ख़ामोश तमाचे से उसका सारा बदन झन-झना उठा। हथौड़े की तरह उसके दिमाग़ पर एक ही चोट पड़ती रही अनिल ! अनिल !! अनिल !!! वह अनिल कौन है ? मैं उसका पता लगाकर छोडूंगा। उस पर एक विवाहित स्त्री को भगा कर ले जाने का दावा करूँगा, उसे जेल भिजवाऊँगा, उसे जान से मार दूँगा···"

पागलों की तरह दौड़ता हुआ वह विमला के कमरे में पहुँचा, उसे मालूम था कि अपनी 'वारड्रोव' के एक ख़ाने में विमला अपने पत्र इत्यादि रखती है। चाबियों का गुच्छा सामने पलंग पर पड़ा था जिसे जाते-जाते वह फेंक गई थी। सुधीर ने 'वारड्रोव' खोली, ख़ाने को चाबी लगाकर बाहर खींचा, उसमें रखे हुए पत्रों के पुलिन्दों और काग़ज़ों को टटोला, सबसे नीचे की तह में लाल रेशमी फीते से बँधे हुए कुछ पत्र रखे थे। ज़रूर ये अनिल के पत्र होंगे। उसका विचार ठीक निकला। प्रत्येक पत्र में प्रेम का ऐलान—"विमला मेरी जान !" "मेरी अपनी विमला" "मेरी अच्छी विमला" "तुम्हारा और सिर्फ़ तुम्हारा अनिल" इस दुनिया में और अगली दुनिया में तुम्हारा, तुम्हारा······ ···" हर वाक्य एक ज़हरीले नश्तर की तरह उसके दिल में कचोके लगाता रहा। एक-एक करके वे पत्र ज़मीन पर गिरते रहे, मगर यह क्या ? पत्रों के बीच में तय किया हुआ अखबार का एक पन्ना, खोलने पर देखा एक नव-युवक का चित्र—गहरी चमकती हुई आँखें, ऊँचा माथा, मुसकराते हुए होंठ···नीचे यह समाचार छपा हुआ था।

नवयुवक की मृत्यु

हमें यह सूचना देते हुए हार्दिक दुःख होता है कि लखनऊ के नव-युवक, प्रगतिशील साहित्यकार और इनकलाबी-कवि अनिल कुमार 'अनिल'

की मृत्यु हो गई है, सन्, ३९ के सत्याग्रह में वह जेल गये थे और वहीं उन्हें तपेदिक की बीमारी हो गई थी······"

सुधीर सारी ख़बर न पढ़ सका, इसलिए कि अखबार के टुकड़े पर तारीख़ दी हुई थी—१८ जून, सन् १९४०

उसके हाथ से बाकी पत्र और अख़बार का टुकड़ा ज़मीन पर गिर पड़े। उसकी कुछ समझ में नहीं आया कि बात क्या है। अनिल! अनिल!! अनिल!!! क्या कोई मर कर भी ज़िन्दा हो सकता है?

खोए हुए मुसाफ़िर और हारे हुए जुआरी की तरह वह खाने के कमरे में वापस आया। मेज़ पर अनिल का पत्र और लिफ़ाफ़ा पड़े हुए थे। उसने लिफ़ाफ़ा उठाकर एक बार फिर ध्यान से देखा। दर्जनों गोल मुहरों के बीच एक चौकोर मुहर लगी हुई थी जिस पर अंग्रेज़ी के तीन अक्षर छपे हुए थे—डी० एल० ओ०=डैड-लैटर-आफ़िस।

जग्गा

बलवन्त सिंह

माझा के इलाके मे भेकन एक छोटा-सा अप्रसिद्ध गाँव था। मुश्किल से सौ घर होगे। अधिकतर सिखो की बस्ती थी। यहाँ की एक बात विशेष थी, वह यह कि किसी समय यहाँ कोई असाधारण-तौर पर हसीन लडकी सामने आती, जिसके साथ किसी नवयुवक पुरुष के प्रेम की कहानी इस मात्रा मे प्रेम-भरी होती कि शशि-पुन्नो, सोहिनी-महिवाल, और हीर-राँझा के किस्से भी मात हो जाते थे। और अबकी बार आने मे गुरुनाम-कौर का नाम था।

गुरुनाम के हुस्न ने आसपास की बस्तियो के नवयुवको मे एक हल-चल-सी मचा दी थी। वह एक गुडिया के समान थी, चीनी की मूर्ति। चलती तो इस मन्द गति के साथ कि पैरो के चिन्ह तक दृष्टिगोचर न होते। लज्जित और नशीली आँखे ऐसे पाप का आमन्त्रण देती थी कि जिससे अच्छे पुण्य का ख़याल कल्पना-बुद्धि मे न आता था। लेकिन अभी वह अबोध थी। यौवन-काल का आगमन था। और वह निश्चिन्त और जवानी से भरी हुई अविवाहित, पूर्ण लज्जा को अभी इस तरह अनु-भव करती थी जैसे मौन और पूर्ण शान्ति के समय मे कही दूर से शह-नाई की उडती हुई आवाज़ सुनाई दे जाये। अभी वह पुरुषो के सकेतो का मतलब न समझती थी। वह अपनी मुसकान हर किसी के सामने रख देती। वह सबसे हँस कर बात कर लेती। अभी उसमे यौवन की लज्जा पैदा न हुई थी। इसलिये जो भी व्यक्ति उससे बात कर लेता, यही सम-झता कि गुरुनाम उससे प्रेम करती है। एक बार तो सिगारासिह ने नव-

युवको के झुरमुट मे खडे होकर कह दिया था कि वह गुरुनाम को भगा ले जायगा। उस समय दिलीपसिह उधर से निकला तो दूसरो ने उसे समझाया कि देखो दिलीपसिह भी गुरुनाम के प्रेमियो मे गिना जाता है। उसने सुन पाया तो परिस्थितियाँ भीषण दशा इख्तियार कर लेगी। इस पर सिगारासिह ने ठहाका लगाया और दिलीप के पीछे खडे होकर उस का उपहास करने के लिये भक्क-भक्क की आवाज़ निकालने लगा। इस पर दिलीप की आँखो मे खून उतर आया। उसने क्रुद्ध-दृष्टि से सिगारा की ओर देखा और कडक कर बोला—"तूने बकरा क्यो बुलाया है ?"

सिगारा ने लुङ्गी को कस लिया और ताल ठोक कर मुठ-भेड पर आन खडा हुआ। दिलीप की आँखे आफत बरसा रही थी। निकट था कि दोनो जवान परस्पर गुथ जाये, मगर सबने बीच-बचाव कर दिया। आखिर कहाँ तक ? एक दिन खूनी पुल पर दोनो का मुकाबला हो गया। दिलीप का टखना उतर गया और दिलीप की लाठी के एक ही आघात से सिगारा का जबडा टूट गया। जान तो बच गई मगर आकृति बिगड गई। उस दिन से सब को कान हो गये और अब दिलीप के जीते-जी गुरुनाम का अधिकारी पैदा होना असम्भव था।

रात भीग चुकी थी। चन्द्र पूर्ण था। गाँव मे सन्नाटा छाया हुआ था। कभी-कभी कुत्तो के भूँकने की आवाज़ आ जाती। उस समय रहट की चर्ख़ी के पास एक जगली बिल्ला बैठा पूँछ हिला रहा था और अत्यन्त भययुक्त म्याऊँ-म्याऊँ कर रहा था।

यह रहट कूडे के ढेर के पास गाँव के बाहर की ओर था। साथ ही पीपल का एक बहुत बडा और घना पेड था जिस पर एक झूला पडा था। चूँकि बैलो को हाँकने वाला कोई था नही, इसलिये जी चाहता तो चल देते, जी चाहता तो ठहर जाते। उस समय वे चुप खडे सींग हिला रहे थे।

इतने में एक साँडनी-सवार सिख-पुरुष पीपल के नीचे आकर रुका। उसने साँडनी को नीचे बिठाना चाहा। साँडनी बिल-बिला कर मचली

और फिर धप्प-से बैठ गई। पंजाब के देहात में छः फीट ऊँचा जवान कोई आश्चर्य की बात नहीं, मगर इस पुरुष के कन्धे असाधारण तौर पर चौड़े थे। हाथों और मुँह की नसें उभरी हुईं, आँखें लाल अंगारा, नाक जैसे अक़ाब की चोंच, रंग स्याह, चौड़े और कठोर जबड़े। सिर ऐसे दिखाई पड़ता था जैसे गर्दन में से काट कर बनाया गया हो। जूड़े पर रंग-बिरंगी जाली थी जिसमें से तीन बड़े-बड़े फुँदने निकल कर उस की काली दाढ़ी के पास लटक रहे थे। कानों में बड़े-बड़े कुण्डल, काले रंग की छोटी-सी पगड़ी के दो-तीन बल सिर पर, शरीर पर लम्बा कुर्त्ता और मोंगिया रंग की धारीदार लुंगी उसकी एड़ियों तक लटक रही थी। गले का बटन खुला हुआ था और उसके छाती परके घने बाल दिखाई दे रहे थे। उसके हाथ में था एक तेज़ धारदार बल्लम।

आते ही उसने बैलों को दुतकारा और वे चलने लगे। उसने जूते उतारे, लुंगी को उठाया और अपने मोटे लोहे के कड़े को पीछे हटा कर पानी के कुंड की ओर बढ़ा। पहले उसने मुँह-हाथ धोया, फिर ज़ोर से खाँसा और पानी पीने लगा।

जब वह पगड़ी के कोने से मुँह पोंछने लगा तो एक नवयुवती, अविवाहित लड़की को देखकर ठिठक गया। लड़की नें पानी भरने के लिये घड़ा कुण्ड के नीचे किया। उसकी गोरी कलाई पर की काली चूड़ियाँ एक खनक की आवाज़ के साथ वजकर एक-दूसरे के ऊपर गिर गई। गुलाबी रंग की शलवार, छींट का घुटनों तक का कुर्त्ता, सिर पर धानी रंग की हल्की-फुल्की ओढ़नी। कानों में छोटी-छोटी बालियाँ। जब उसने अपना कोमल होंठ दाँतों तले दबाया और घड़े को एक झटके के साथ उठा कर कूल्हे पर रखा तो उसकी कमर में एक आकर्षक बल-सा पैदा होकर रह गया।

पुरुष ने पहले एक पाँव जहाँ पानी गिरता था वहाँ से बाहर निकाला और उसे झटक कर जूता पहन लिया। फिर उसने अपने दूसरे पाँव को झटका दिया और दूसरा जूता भी पहन लिया। तब वह अपनी

बल्लम हाथ मे लिये हुए उस स्थान पर, जहा कि एक सफेद मुर्गी के बहुत से पख पडे थे, खडा हो गया। पास ही किसी के घर की कच्ची दीवार थी, जिस पर उपले रखे थे। जब लडकी दीवार के निकट से जाने लगी तो पुरुष ने बल्लम से एक उपला नीचे गिरा दिया, जो लडकी के पॉव के पास जा कर गिरा। उस समय अपरिचित पुरुष ने उसके पाँव देखे जैसे सफेद-सफेद कबूतर। तलवो की हल्की-गुलाबी रगत ऐसे मालूम होती थी जैसे वह पॉव अभी-अभी गुलाब की कलियो को रौद कर चले आ रहे हो। लडकी ने अपनी लम्बी-मोटी पलके उठा कर उसकी तरफ देखा। शायद उसने इसे केवल एक राहगीर समझा था, मगर उसकी डरावनी सूरत देख कर उसकी बडी-बडी शर्मीली आँखो मे भय का प्रतिबिंब दिखाई देने लगा। पुरुष ने भारी-भरकम और कठोर स्वर मे पूछा—"तू कौन है ?"

लडकी की दृष्टि पुरुष के चेहरे पर जमी हुई थी। यह पहला मौका था कि किसी व्यक्ति ने उसे इस मात्रा मे अश्लीलता के साथ अपनी ओर प्रवृत्त किया था। उसके लाल-लाल कोमल होठ फडकने लगे, जैसे किसी ने लाल मिर्चे उन पर छिडक दी हो। किन्तु पुरुष असाधारण भयानक था। पुरुष ने उसी स्वर मे अपना प्रश्न दोहराया—"तू कौन है ?"

लडकी न समझ सकी कि इस बात का क्या उत्तर दे। उसने अपनी मेहदी-लगी उगली उठाकर सकेत से बताया—"मै वहाँ उस घर मे रहती हूँ।"

पुरुष ने चुभती हुई नजरो से उसकी तरफ देखा और अपनी चौड़ी बाँहो को हिलाकर बोला—"तेरा नाम क्या है ?"

लडकी की आँखो मे पानी भर आया, बोली—"गुरुनाम।"

"तू वहाँ किसके साथ रहती है ?"

"मेरी माँ है—माँ, भाई, बाप, दादा सब ही रहते है।"

"मुझे अपने घर ले चल।" पुरुष ने उसके साथ-साथ पैर बढ़ाते हुए कहा।

"मुझे तुमसे डर लगता है।"

पुरुष के मस्तक पर बहुत-सी त्यौरियाँ पड़ गईं। उसने अपनी दुलहिन की तरह सजी हुई साँडनी की नकेल पकड़ कर अपनी समझ में ज़रा कोमल स्वर में पूछा—

"क्यों ?" क्या तुम लोग सिख नहीं हो ?"

लड़की का चेहरा कानों तक लाल हो गया—"लेकिन मुझे तुमसे ख़ौफ़ मालूम होता है।"

"क्यों ?" पुरुष ने उजड्डपन से हठ करते हुए पूछा।

लड़की ने एक क्षण के लिये उसकी चमकदार आँखों की ओर देखा—"तुम हँसते क्यों नहीं ?"

"अरे यह बात ?" यह कहकर अपरिचित ने एक भयानक अट्टहास किया, जैसे कोई पानी से लबा-लब भरा मटका ज़मीन पर उँड़ेल दे। उसके कहकहों की आवाज़ सुनकर चमगादड़ डर के मारे अपनी-अपनी जगहों से उड़ गये।

गुरुनाम का घर गाँव से बाहर धरेक के पेड़ों के झुंड के पास था। उसकी ममटी तो बहुत दूर से नज़र आती थी।

दरवाज़े के सामने पहुँचकर अजनबी रुक गया और गुरुनाम ने अन्दर से अपने बापू और भाई को बाहर भेजा। उनको देखते ही अजनबी ने ऊँची आवाज़ में कहा—"वाहे गुरुजी का ख़ालसा श्री वाहे गुरुजी की फ़तह !"

अजनबी बिना किसी हिचकिचाहट के बोला—"मैं दूर से आ रहा हूँ, रात अधिक बीत चुकी है, मैं आज यहीं ठहरूँगा।"

बापू दराँती अपने पोते के हाथ में देकर अजनबी के मुँह की तरफ़ देखने लगा। वह बहुत प्रसन्नचित और मिलनसार व्यक्ति था किन्तु अजनबी की भयानक शक्ल उसे असमंजस में डाले हुए थी। ख़ैर उसने स्वीकृति प्रकट करते हुए उत्तर दिया—"मैं हर तरह से खिदमत के······"

पूर्व इसके कि वह अपना वाक्य पूरा कर सके, अजनबी साँडनी लड़के को सौंप कर द्वार के भीतर प्रवेश कर चुका था।

यद्यपि घर का कुल सामान ग़रीबों का-सा था, किन्तु गोबर से लिपी हुई कच्ची दीवार प्रमाण दे रही थी कि स्त्रियाँ काहिल या आरामतलब क़दापि नहीं हैं। घर के सब व्यक्ति ब्याह वाले घर गये हुए थे, सिवाय चार के। ड्योढ़ी से निकलकर अजनबी आँगन में उपस्थित हो गया। एक बच्चा छाती से गुल्ली डण्डा लगाये सो रहा था। आँगन पशुओं के मूत्र और गोबर से अटा पड़ा था। एक ओर सानी की नाँद के पास एक भैंस जुगाली कर रही थी। भूसे और खली की सानी की गन्ध घर-भर में फैली हुई थी, रस्सी पर मैले-कुचैले कपड़े लटक रहे थे। एक ओर बैलों के ज़रिये चलने वाली चक्की, दूसरी ओर तन्दूर और उसके पास ही दीवार से टिका हुआ छकड़े का पहिया। यह बड़े-बड़े उपले, कोने में कपास की छड़ियाँ, चूल्हे के पास छोटे बर्तनों का अंबार। एक कमरे में से सफ़ेद-सफ़ेद चमकते हुए बर्तन दिखाई दे रहे थे; साथ ही तागे में पिरोये हुए शलजम के टुकड़े सूखने के लिये लटक रहे थे।

आँगन में चलकर बूढ़ा बापू अजनबी को दरवाज़े से बाहर छप्पर के नीचे ले गया। थोड़ी-सी जगह के तीनों तरफ़ एक कच्ची दीवार उठा दी गई थी, सूखे हुए उपले जो जलाने के काम में आ सकते थे, इस जगह रखे जाते थे, यहाँ पर एक चारपाई डाल दी गई। चारखानों वाला एक खेस और अजनबी के दिल की तरह कठोर एक तकिया उस पर रख दिया गया।

गुरुनाम ने कपास की छड़ियों का एक गट्ठा तन्दूर में फेंका और स्वयं आटा गूँधने लगी। जिस समय वह तन्दूर में रोटियाँ लगाने लगी तो उसकी ओढ़नी सिर से खिसक गई। उसकी लम्बी चोटी के रंग-बिरंगे फुँदने उसकी पिंडलियों तक लटक रहे थे। दहकते हुए तन्दूर की रोशनी उसके सुन्दर चेहरे पर पड़ रही थी और अजनबी चुपके-चुपके उसे देख रहा था।

शलजम की तरकारी, एक कटोरे में शक्कर, घी, अचार, दो बड़ी-बड़ी प्याज़ की गठियाँ और आठ चौड़ी-चौड़ी रोटियाँ थाल में रखकर गुरुनाम उसको दे आई।

जब अजनबी ने ऊँचे स्वर में तीन-चार डकारें लीं और बड़े ज़ोर के साथ मुँह में उँगली फेरकर कुल्ली की तो गुरुनाम को मालूम हो गया कि वह भोजन समाप्त कर चुका है।

वह बर्तन उठाने लगी तो उसने देखा कि अजनबी कपड़े उतार रहा है। जब उसने लुंगी उतारी और उसे झाड़कर तकिया के पास रखने लगा तो सोने का एक कंठा नीचे गिर पड़ा। गुरुनाम ठिठक कर वापस जाने लगी तो अजनबी ने धीरे से पूछा—"गुरुनाम ! जा रही हो क्या ?"

गुरुनाम नियमानुसार अपनी बच्चों-जैसी आकर्षक मुसकराहट से मुसकराई और ओढ़नी सम्भालते हुए आगे झुक कर आहिस्ता से बोली—"सब लोग सो जायेंगे तो मैं आऊँगी।"

अजनबी दूर खेतों की तरफ़ देख रहा था। शरींह और बबूल के पेड़ काले देवों की तरह खड़े थे। लुंड-मुंड बेरियों पर बयों के घोंसले लटक रहे थे। ऐसे सुनसान समय में तारों-भरे आकाश के नीचे दूर के रहट से किसी नौजवान के हर्ष-भरे गाने की मध्यम-मध्यम आवाज़ आ रही थी।

"बागें-विच केला ई
निकल के मिल वालू !
साडा वन्जने दा वेला ई
निकल के मिल वालू !"

इतने में गुरुनाम दबे पाँव, शलवार के पाँयचे उठाये, निचला होंठ दाँतों तले दबाये चुपके-चुपके पग नापती हुई आई।

थोड़ी देर बाद दोनों में घुल-मिल के बातें होने लगीं। अपरिचित ने बहुत-से सोने के गहने और मोतियों के हार निकाले। निकट था कि गुरुनाम के मुँह से आश्चर्य और प्रसन्नता के मारे एक चीख़ निकल

जाती, मगर अजनबी ने होंठों पर उँगली रख कर चुप रहने का संकेत किया ।

गुरुनाम बहुत देर तक मैना की तरह चहकती रही; इधर-उधर की बातें करती रही; किन्तु उसका ध्यान गहनों की तरफ़ था । अन्त में उसने अपनी बातों से आप ही उकता कर एक गहरी साँस ली और थकी हुई आवाज़ में बोली—

"क्यों, तुम ये गहने कहाँ से लाये हो ? मेरे ख़याल में तुम जेब-कतरे तो नहीं हो ? मुझे जेब-कतरों, चोरों और डाकुओं से सख़्त नफ़रत है । वह झट-से गला दबा कर आदमी को मार डालते हैं ।" यह कहकर गुरुनाम अपनी मोटी-मोटी आँखों से शून्य स्थान में देखने लगी, जैसे कोई सचमुच का हत्यारा उसका गला दबाने को आ रहा हो ।

"मत घबराओ, तुम भी कैसी बच्चों की-सी बातें करती हो, भला मेरे होते हुए तुमको किस बात का डर ? उठो, यहाँ मेरे पास चारपाई पर बैठ जाओ ।"

गुरुनाम उठ कर उसके पास बैठ गई । उसने अजनबी की चौड़ी बाँहों का निरीक्षण किया और फिर गोया अन्तरात्मा से सन्तुष्ट होकर कहने लगी—

"तुम कितने अच्छे हो । ये गहने तो तुम अपनी बीवी के लिये लाये होगे ना ?"

"हाँ ।"

"गुरनाम ने अपनी हथेली पर गाल रखते हुए बड़ी अभिलाषा से पूछा—

"तुम्हारी बीवी कैसी है ?"

"मगर मेरी तो अभी शादी भी नहीं हुई ।"

"अच्छा तो होने वाली बीवी के लिये लाये हो ?'

अजनबी ने अपनी दाढ़ी के खुरदरे बालों पर हाथ फेरते हुए कहा—
"अभी तो मुझे यह भी मालूम नहीं कि मेरी बीवी कौन बनेगी, बनेगी

भी या नहीं।"

गुरुनाम ने अपनी दोनों हथेलियों पर ठोढ़ी रखकर अपनी आँखों को जल्द-जल्द झुकाते हुए नाक ज़रा सिकोड़ कर भोलेपन से कहा—"हाँ, तुम काले हो ज़रा !"

अजनबी की छाती में जैसे किसी ने घूँसा मार दिया। मगर गुरुनाम अत्यन्त गम्भीरता से किसी गहरे विचार में डूब चुकी थी। कदाचित् वह अजनबी के लिये स्त्री प्राप्त करने की युक्ति सोच रही थी।

"ये गहने तुम ले लो।"

गुरुनाम ने चौंक कर अजनबी की तरफ़ देखा—"फिर तुम अपनी स्त्री को क्या दोगे ?"

अजनबी को कुछ उत्तर न सूझा, लड़खड़ाती ज़बान से बोला—"फिर मैं तुम से ले लूँगा।"

गुरुनाम की आँखें चमकने लगीं। उसकी बाछें खिल गईं। ताली बजाकर बोली—"मैं इनको उपलों में छिपा दूँगी। कभी-कभी रात को अच्छे-अच्छे गहने पहन कर खेतों में जाया करूँगी।"

कुछ देर चुप रहने के पश्चात् अजनबी ने कहा—"गुरुनाम तुम भी तो मुझ को कुछ दो।"

गुरुनाम ने दोनों हाथों से अपना मुँह छिपा लिया।

"मेरे पास क्या है ?"

"कुछ भी हो।"

गुरुनाम मुँह पर से हाथ हटाकर कुछ देर सोचती रही, फिर उसने अपने गले से कौड़ियों और खरबूज़े के रंग-बिरंगे बीजों का हार उतार कर अजनबी की तरफ़ बढ़ा दिया। वह अपनी इस तुच्छ भेंट को देख कर झेंप-सी गई और उसके गाल दहकने लगे।

थोड़ी देर बाद गुरुनाम ने एक अँगूठी उठाकर कहा—"इसे मेरी उँगली में पहना दो; देखो कैसी लगती है।" अजनबी ने अपने काले-काले मैले-कुचैले लम्बे-चौड़े हाथों में गुरुनाम का कमल-सा हाथ लिया।

गुरुनाम नज़रें झुकाये, बच्चों की-सी सादगी और सीधेपन के साथ अँगूठी की ओर देख रही थी । उसकी जुल्फों ने उसके गालों का एक बड़ा भाग ढाँप रखा था । अजनबी तल्लीनता की दशा में उसके सुन्दर सीपों-जैसे पपोटों पर दृष्टि गाड़े हुए था । जब वह उसकी उंगली में अँगूठी पहनाने लगा तो उसकी अपनी उंगलियाँ काँपने लगीं और उसे ऐसा अनुभव होने लगा, जैसे उसकी चार-चार अँगुल चौड़ी कलाइयों का सारा बल आकृष्ट होता जा रहा है ।

गुरुनाम चौंकी और सहमी हुई हिरनी की तरह उठ खड़ी हुई—"अम्मा खाँस रही है, अब मैं जाती हूँ ।"

अजनबी का स्वप्न टूटा ।

गुरुनाम ने आगे झुककर धीमी-सी आवाज़ में पूछा—"जाऊँ क्या ?"

अजनबी की आज्ञा लेकर वह गहनों की पोटली दबाये झट अन्दर चली गई ।

गाँव के पशु रात-भर की गर्मी से घबराकर तालाब में घुस पड़े ।

अजनबी जाने के लिये तैयार बैठा था । गुरुनाम ने उसे एक बासी रोटी पर मक्खन और बड़े कटोरे में लस्सी दी । अब अजनबी कपड़े पहन कर तैयार हो गया तो गुरुनाम रोने लगी । अजनबी ने धीरे-से कहा—"रोती क्यों हो ?"

"तुम मुझे बहुत अच्छे लगते हो, तुम मत जाओ ।"

अजनबी हँस पड़ा—"मैं फिर आऊँगा ।"

बापू को आते देखकर उसने आँसू पोंछ डाले ।

बापू अजनबी को विदा करने के लिये कुछ दूर तक उसके साथ गया । उसने अजनबी से पूछा—"क्या मैं अपने प्रतिष्ठित मेहमान का नाम मालूम कर सकता हूँ ?"

"हाँ ।" अजनबी ने अपनी तीक्ष्ण दृष्टि उसके चेहरे पर गाड़ कर उत्तर दिया । फिर उसने अपने धूप में चमकने वाले बल्लम की ओर अभिमानपूर्वक देखते हुए कहा—"और तुमको यह भी मालूम होना

चाहिये कि अगर मेरे नाम की चर्चा अपने या पराये किसी से भी की तो तुम्हारे और तुम्हारे खानदान के सब व्यक्तियों के खून से मुझे हाथ रंगने पड़ेंगे।"

बूढ़े का चेहरा पीला पड़ गया।

अजनबी साँडनी पर सवार हो गया और नकेल को झटका देकर अपनी भारी आवाज़ में बोला—"आज रात जग्गा डाकू तुम्हारा मेह-मान था।"

जग्गा डाकू, असली नाम सरदार जगतसिंह विरक ! वह ऐसा भया-नक व्यक्ति था, जिसका नाम सुनकर बड़े-बड़े बहादुरों के छक्के छूट जाते थे। हत्या, लूट-पाट, अत्याचार, विनाश के कार्य प्रतिदिन के दिल-बहलाव थे उसके। लड़कपन और युवावस्था खून की होली खेलने में ही गुज़र गई। बहुत-सी ज़मीन का मालिक था। बड़ों-बड़ों पर हाथ साफ़ करता था। ग़रीब खुश थे। उसके विरुद्ध गवाही देने का कोई व्यक्ति साहस न कर सकता था। अब तीस वर्ष से ऊपर आयु थी। मौत के साथ खेलता हुआ सो जाता और मौत का मज़ाक उड़ाता जाग उठता। प्रेम, दया, नेकी इत्यादि का उसके निकट कुछ भी मूल्य न था। दूर-दूर तक उस की धूम थी। इलाका-भर उससे थर्राता था। उसका दिल पत्थर, बाँहें लोहा, क्रोध प्रलय, बुद्धि अंगार···वह विपत्ति था।

लोगों ने उसके नाम पर कई गाने बना लिए थे। नवयुवक झूम-झूम कर उनको गाया करते थे। एक घटना प्रसंग यों होता था—

"पक्के पुल ते लड़ाइयाँ होइयाँ, पक्के पुल ते,
पक्के पुल ते लड़ाइयाँ होइयाँ, ते छवियाँ दे किल टुट गए·········जगिया।"

या फिर लायलपुर में जो उसने एक ज़बरदस्त डाका डाला था; और बच कर वापस भी आ गया था; उसकी चर्चा होती थी—

"जगे मारिया लायलपुर डाका, जगे मारिया।
जगे मारिया लायलपुर डाका ने ताराँ खड़क गियाँ आपे॥"

उसकी लम्बी, काली, डरावनी ज़िन्दगी की रात में एक तारा उभरा जिसने उसकी नज़रों को चकाचौंध कर दिया और वह तारा थी—गुरुनाम। गुरुनाम बेचारी नुकसान भरने के लिए दे दी गई। उसे प्रेम का पता ही न था। उसे लोग कनखियों से देखते, वह हँस देती। उसके उत्तम भावों, सौंदर्य और यौवन-वसन्त को ठीक प्रकार से किसी ने भी सही तौर पर गति देने का प्रयास न किया था। अभी उसको इतना होश भी न था कि आँखों की चतुराई का शिकार खेले, घायलों का तड़पना देखे और उस आनन्द से रक्षित हो जो प्रेमियों के लिए रक्षित है। वह भोली-भाली सादी सी छोकरी यह जानती ही न थी कि वह शिकारी पक्षी, जिसको घायल करने के लिए पंजाब के बलवान नवयुवकों की कमानें टूट चुकी थीं और जिस पर जो भी तीर फेंका जाता था वह उसे छूकर और कुन्द होकर ज़मीन पर गिर पड़ता था, वही बाज़ उसके भूठे भावों का शिकार होकर अधमरा उसके पैरों के पास पड़ा था। और वह तीर प्रकृति ने उसकी पलकों में पिन्हा कर रख छोड़ा था।

रात्रि के अन्धकार में जग्गा उनके यहाँ आता और प्रातःकाल मुँह-अँधेरे ही विदा हो जाता। उसने स्वयं को एक धनाढ्य ज़मींदार ज़ाहिर किया। बापू के अतिरिक्त घर के सभी व्यक्ति उसको धर्मसिंह के नाम से जानते थे। गुरुनाम का आकर्षण उसे खींच लाया था। उस के दिल में एक पीड़ा-सी रहती थी कि वह उस फ़रिश्ते को अपनाने से पहले स्वयं को क्योंकर उसके योग्य बनाये। उसने कभी भी उससे प्रेम जताने का प्रयास नहीं किया। वह नहीं जानता था कि क्योंकर उसको आरम्भ करे। वह सोचता था कि न मालूम उसके प्रेम प्रकट करने से गुरुनाम क्या रवैया इख्तियार करे। वह उसके पास बैठी चहकती रहती थी और वह भूत-सा बैठा सुना करता था। कभी-कभी उसको स्वयं से घृणा होने लगती। आकृति तो उसकी पहले ही कुरूप थी किन्तु उसके स्वभाव पर तो शैतान अपना मुंह छिपाता था। गुरुनाम थी कि उसने कभी भी उससे घृणा न की। वह अत्यन्त प्रेम और दया के साथ व्यवहार

करती । अगर वह उसे अपने निकट बैठने के लिए कहता तो वह उसके निकट ही बैठ जाती, यद्यपि उसने आज तक उसको छूने का साहस न किया था। गुरुनाम की दैनिक प्रवृत्ति उसके दिल में धड़कन पैदा कर देती थी । उसकी सुन्दरता उसका सिर झुका देती थी। केवल उसके हृदय की व्याकुलता और विवेक का झिड़कना बढ़ गया । यहाँ तक की लोगों ने अत्यन्त आश्चर्य से सुना कि जग्गा ने डाकाज़नी त्याग दी ।

डेढ़ वर्ष का समय आँख झपकते व्यतीत हो गया ।

जग्गा सुबह-शाम पाठ करता था । ग़रीबों को खिलाता-पिलाता, दान करता था । गुरुद्वारे में जाकर सेवा करता तथा प्रत्येक के साथ कोमलता और सहनशीलता से बातचीत करता । उसने बापू से प्रार्थना की कि गुरुनाम का ब्याह उसके साथ कर दिया जावे, क्योंकि उसने लूटपाट त्याग दी है । और जो कुछ उसने लूटा, वह सब बड़ी तोंद वालों का था; ग़रीबों की कमाई का एक पैसा भी उसके पास न था। वह अपनी बहुत-सी ज़मीन और रुपया उनको देने को तैयार था और बापू को वह सदैव पुरखा समझकर उनकी सेवा करेगा, किन्तु गुरुनाम को यह न मालूम होने पाये कि वह जग्गा डाकू था और न ही उसे इस समय इस बात का ज्ञान होने पाये कि उसका ब्याह किससे होने वाला है; क्योंकि उसको विश्वास था कि वह उसको चाहती थी। जब वह अपने प्रीतम को एकबारगी अपना पति देखेगी तो उसके आश्चर्य की सीमा न रहेगी । नेक बापू ने सब-कुछ स्वीकार कर लिया । जग्गा भेकन से चौदह कोस दूर रहता था । उसके आवागमन की सूचना किसी को कानों-कान न होती थी । लोगों ने उस अपरिचित को कभी-कभार उनके घर से निकलते हुए देखा था किन्तु किसी ने कोई विशेष ध्यान न दिया; क्योंकि प्रथम तो वह आता ही कभी-कभार था और दूसरे वह रातों-रात लौट भी जाता था । वह सदैव अपनी बढ़ी हुई व्यस्तता का बहाना कर देता था । जग्गा को संसार जानता था किन्तु उसको कोई पहचानता न था । जग्गा को विवाह की स्वीकृति मिल ही चुकी थी । अब वह चाहता था कि

गुरुनाम की ज़बान से भी उस चाह को स्वीकृति करवा ले अथवा उसे यह न बतलाये कि उसका भावी पति वही था।

एक दिन सूर्यास्त के बाद वह भेकन में प्रविष्ट हुआ, घर पहुँच कर पता चला कि गुरुनाम साथ वाले गाँव में जुलाहों को सूत देने के लिए गई हुई थी।

जग्गा ने शीशे में अपनी आकृति देखी। उसने पगड़ी को ज़रा वक्र किया। पगड़ी की नोक को ऊँचा किया और फिर उसने सबकी दृष्टि बचाकर दीपक में से सरसों का तेल हथेली पर उलट लिया और उसे अपनी घने और खुरदरे बालों वाली धूल से भरी दाढ़ी पर खूब अच्छी तरह मल लिया। फिर वह मूँछों को बल देता हुआ घर से बाहर निकला और धीरे-धीरे टहलता हुआ पाँच-छः फ़र्लांग तक चला गया।

हर तरफ़ धुंध-सी छाई हुई थी। चन्द्रमा के हलके प्रकाश में वह भूत के तुल्य दिखाई पड़ता था।

दूर से एक आकृति दिखाई दी। उसने ध्यान से टकटकी बाँध के देखा। कोई स्त्री थी और निश्चित रूप से वह थी भी गुरुनाम। जग्गा असील मुर्ग़ की तरह तन कर खड़ा हो गया।

गुरुनाम पास आते ही मुसकरा दी। किन्तु मुसकराहट में कुछ दृढ़ता झलकती थी। सिर पर एक भारी गठरी थी—"मेरी तो गर्दन टूट गई। इस गठरी में क्या भर लाई हो?" यह कहते हुए जग्गा ने एक हाथ से यह मन-भर का बोझ उसके सिर पर से यों उठा लिया जैसे कोई दो साल के बच्चे को टाँग पकड़ कर उठा ले।

"उपले, और क्या होता?" गुरुनाम ने अपनी पतली-सी नाक सिकोड़कर कहा—"आ रही थी रास्ते में उपले चुनने लगी। यहाँ तक कि शाम इसी में हो गई।" दोनों खेतों की मेंड़ पर बैठ कर बातें करने लगे।

आज जग्गा ने गुरुनाम की तरफ़ देखा तो उसके दिल में अजीब-अजीब विचार पैदा होने लगे। वह अपनी होने वाली पत्नी की ओर बड़े

ध्यान से देख रहा था। उसकी ओर वह एकटक देख रहा था, उसके हाथ की बनाई हुई रोटियों और साग की कल्पना उसे व्याकुल किये देती थी, कभी तो उसके दिल में आता कि सारा भेद खोल दे और कभी सोचता कि हरगिज़ न बताये। अन्त में उससे न रहा गया, क्योंकि गुरुनाम कुछ खिन्न-सी हो रही थी। "गुरुनाम !" यह कहते-कहते उसकी लार उसकी दाढ़ी पर टपक पड़ी। उसने उसे अपनी बाँह से पोंछा और फिर बोला— "गुरुनाम ! तुमको एक खुश-खबरी सुनाना चाहता हूँ।" गुरुनाम ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह अपने पाँव के अँगूठे से ज़मीन कुरेदने में व्यस्त थी और गहरे सोच में थी। यद्यपि वह पहली-सी चञ्चल और अल्हड़ न रही थी किन्तु चूँकि जग्गा से काफ़ी हिली-मिली थी, इसलिये उससे अधिक लजाती भी नहीं थी।

जग्गा को कुछ उलझन-सी होने लगी। उसने उसका कंधा हिलाकर पूछा—"क्यों गुरुनाम किस सोच में हो ?"

गुरुनाम पहले तो चौंकी, फिर उसने धीरे से कहा—"मैं बहुत परेशान हूँ। मैं बहुत दिनों से चाहती थी कि तुम को सब हाल सुनाऊँ लेकिन "

"लेकिन क्या !"

"शर्म आती थी।" गुरुनाम ने झेंपकर उत्तर दिया।

जग्गा कुछ ताड़ गया, मुसकराया—"अरे मुझसे शर्म कैसी ?"

गुरुनाम चुप रही।

जग्गा खिसक कर उसके पास हो गया। उसके बार-बार हठ करने पर गुरुनाम ने बताया—"वह मेरी शादी करना चाहते हैं।"

"तो उसमें परेशानी की क्या बात है, शादी तो सभी की होती है।"

गुरुनाम की आँखों में आँसू आ गये, भर्राई हुई आवाज़ में बोली— "वह किसी रुपये-पैसे वाले शख्स से मेरा ब्याह करना चाहते हैं, जिसे मैंने देखा भी नहीं, मगर मैं और किसी से···"

यह कहकर वह रो पड़ी।

जग्गा ने अपने ऊपर की तरफ़ उठी हुई साफ़े की नोक को छूकर देखा कि वह नीचे तो नहीं झुक गई है।

फिर उसने छाती फुलाकर कहा—"नहीं गुरुनाम, नहीं, जिसको तुम चाहोगी उसी से तुम्हारी शादी होगी। मैं बापू को खूब समझाऊँगा ···हाँ तो···मगर वह है कौन ?"

जग्गा की आँखें मारे खुशी के चमक रही थीं। गुरुनाम ने उसकी छाती पर सिर रख दिया और फूट-फूट कर रोने लगी। आज उसे उसकी चौड़ी बाहों और सन्दूक-जैसी छाती को छूकर संतोष मिल रहा था।

जग्गा घबरा गया। उसने उसको चुमकारा और दिलासा दिया और फिर उस व्यक्ति का नाम पूछा।

गुरुनाम ने कहना चाहा, फिर रुक गई···और ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। जग्गा ने सान्त्वना दी तो वह बोली—"तुम ज़रूर मेरी मदद करोगे। इन सब के हाथों से बहुत ही दुःखी हूँ ! तुम बहुत अच्छे हो ! उसका नाम···"

जग्गा का दिल बल्लियों उछलने लगा।

"उसका नाम है दिलीप···दिलीपसिंह।"

जग्गा को साँप ने डस लिया।

उसका चेहरा भयानक हो गया।

"दिलीपसिंह उसका नाम है।" गुरुनाम ने दोहराया।

जग्गा की मूँछें लटकने लगीं।

उसके माथे पर बल पड़ गए। शरीर के रोम काँटों की तरह खड़े हो गये। आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। गर्दन की रगें फूल गईं। गुरुनाम ने आश्चर्य से उसकी तरफ़ देखा।

"घर जाओ।" उसने भारी आवाज़ में कहा।

यह कह कर वह उठ खड़ा हुआ।

"तुम फ़ौरन वापस चली जाओ।" उसने कठोर स्वर में गरज कर कहा। गुरुनाम आश्चर्य के साथ उठी और गठरी सिर पर रख कर घर

की ओर चल दी । जग्गा उसी तरह खड़ा हुआ था । उसका चेहरा क्षण-पल भयानक होता जा रहा था । अकाब की-सी चोंचनुमा नाक लाल हो गई । आँखों में खून उतर आया और चेहरे से बर्बरता टप ने लगी । उसने कटार निकाली और उसे मज़बूती से हाथ में पकड़ लिया । दाँत पीसते हुए धीरे से बोला—"दिलीपसिंह ?"

मौत का फ़रिश्ता दिलीपसिंह के सिर पर मँडराने लगा ।

खूनी पुल इलाके-भर में मशहूर था । यह पुल एक छोटी-सी नहर पर स्थित था । नहर के दोनों किनारों पर शीशम के बहुत ही घने पेड़ थे । वहाँ न तो सूर्य की धूप पहुँच सकती थी और न चाँद की चाँदनी । पुल बड़े-बड़े पत्थरों से निर्मित किया गया था । उसके नीचे केवल एक कोठी थी; और पानी दो भागों में विभाजित होकर बहता था । रात के समय ये दो बड़े-बड़े मुँह ऐसे दिखाई पड़ते थे जैसे दो मुँह वाला कोई देव, मनुष्यों को हड़प लेने के लिए मुँह खोले बैठा हो; या जैसे किसी मुर्दे की दो बड़ी-बड़ी आँखें जिनकी पुतलियाँ कौवे नोंच कर खा गये हों । पास ही एक कब्रिस्तान था और कुछ दूरी पर मघंट । रात्रि के समय कोई व्यक्ति उधर से गुज़रने का साहस नहीं कर सकता था क्योंकि उस पुल पर इतनी हत्यायें हो चुकी थीं कि उसका नाम ही 'खूनी पुल' रख दिया गया था । नवयुवतियाँ और बच्चे तो दिन के समय भी अकेले उधर न जाते थे । यह बात प्रसिद्ध थी कि यहाँ एक सिरकटा सैयद रहता था । कभी-कभी उसका सिर तो पुल के नीचे लम्बी-लम्बी चीख़ें मारा करता और वह खुद बिना सिर के अत्यन्त सन्तोष के साथ कब्रिस्तान में टहला करता था ।

आधी रात व्यतीत हो चुकी थी । दिलीपसिंह शहर से लौट रहा था । छोटे से गधे पर दो बोरियों में सामान था । वह सुनार का भी काम करता था और पंसारी की दुकान भी । इसकी अपनी बनाई हुई गुलकन्द खूब बिकती थी ।

वह नौजवान था । प्रसन्न चेहरा, सुन्दर डील-डौल, मसें अभी भीग

ही रही थीं। गालों और ठोढ़ी पर बिलकुल छोटे-छोटे बाल जैसे केसर। आँखें शर्बत से लबालब कटोरे ! सिर पर उस समय लुंगी बाँधे हुए था—उसका एक छोटा-सा साफ़े का छोर नीचे की ओर लटकता हुआ और दूसरा ऊपर की तरफ़ उठा हुआ था। अलगोज़े खूब बजाता था। जब राँझा, हीर की शादी के बाद उसके यहाँ भीख माँगने जाता है, उस घटना को वारिसशाह की हीरे से बड़ी करुणाजनक लय में गाया करता था, बल्कि उसमें तो दूर-दूर तक अपना सानी न रखता था।

दिलीप बलिष्ठ और साहसी युवक था, मगर खूनी पुल का दृश्य और फिर उसके साथ जुड़ी हुई खूनी कहावतें, उस स्थान को और भी भयानक बना देती थीं। रात्रि के अन्धकार में शीशम के घने पेड़ों के तले नहर के सिसक-सिसक कर बहने वाले पानी की आवाज सुन कर उसके दिल को पीड़ा-सी होने लगी। उसने जरा ऊँची आवाज़ में पंजाब का एक मशहूर गीत गाना शुरू किया। अन्धकार और ख़ामोशी में अपनी आवाज़ को सुनकर उसको धीरज हुआ।

उसका गधा पुल पर से पार हो चुका था। वह ठीक पुल के मध्य में था। दिल में प्रसन्न था कि कोई विशेष घटना नहीं घटी। पीछे से उसे अपनी गर्दन पर किसी तेज़ वस्तु की चुभन अनुभव हुई, और जैसे कोई उसके कुर्ते को पकड़े पीछे की तरफ़ खींच रहा हो। उसने घूम कर देखा तो एक देव-जैसे डील-डौल का पुरुष पुल की दीवार पर से उचका हुआ था। उसने अपना बल्लम पीछे से उसकी कमीज में अड़ा दिया था। उस की आँखें अंगारों की तरह दहक रही थीं।

"तुम कौन हो ?" दिलीप ने साहस करके ऊँची आवाज़ में पूछा।

"इधर आ।" भारी और आज्ञा का स्वर आया। दिलीप उसकी तरफ़ बढ़ा...सहसा उसने अजनबी को पहचान लिया, बोला—"मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि मैंने तुमको कहीं देखा ज़रूर है। क्या तुम वही व्यक्ति तो नहीं जिसने तीन साल पहले कुछ लोगों से लड़ते समय मेरा साथ दिया था...हाँ, शायद वह ननकाना साहब का मेला था, तभी की

घटना है और तुमने दो आदमी जान से भी मार डाले थे।"

"बेशक मैं वही हूँ, लेकिन मैं नहीं जानता था, कि तेरा नाम दिलीपसिंह है। मैं तुझे एक अजनबी और नव-उम्र छोकरा समझकर तेरा मददगार बना—और कत्ल तो मैंने बहुत किये हैं। इसी पुल पर ग्यारह आदमी कत्ल कर चुका हूँ और आज मुझको बारहवाँ कत्ल करना है।"

दिलीप को उसके उजड्डपन पर आश्चर्य हुआ और बोला—"मैं नहीं जानता, तुम्हारी मुझसे क्या दुश्मनी है? तुम तो मेरे उपकारी हो।"

"तू गुरुनाम से मुहब्बत करता है जो सिर्फ़ मेरी है। मुझ को यह भी मालूम हुआ है कि तूने सिंगारासिंह को इसी पुल पर बुरी तरह घायल किया था। आज तेरा-मेरा फ़ैसला होगा।"

यह कह कर अजनबी ने बल्लम हाथ से रख दिया और उसकी तरफ़ बढ़ा··· "और मैं चाहता हूँ कि तू एक मर्द की तरह मेरे मुकाबले आ जाये।"

दिलीप आगा-पीछा कर रहा था, उसने कहा—"मैं अपने उपकारी से लड़ना पसंद नहीं करता।"

अजनबी ने गरज कर उत्तर दिया,—"तू बुज़दिल है! यह औरतों की तरह गले में रेशमी रूमाल लपेट कर घूमना और बात है और किसी पुरुष के साथ हाथ के पंजे लड़ाना कुछ और बात है। अगर तू सचमुच अपने-आपके ही बीज से है तो मेरे सामने आ।" यह कहकर उसने उसके मुँह पर थूका।

दिलीप को लज्जा आ गई। वह शेर की तरह बफर गया। वह डंडा जो गधे को हाँकने के लिये हाथ में लिये था, उसने उसके मुँह पर दे मारा। लेकिन अजनबी ने वार रोकने की कोशिश नहीं की। दिलीप ने दूसरी चोट उसके कान पर रसीद की। डंडा टूट गया। उसके मस्तक और कान से रक्त बहने लगा। दिलीप उत्तेजना में था—उसने सम्पूर्ण बल के साथ एक मुक्का उसके मुँह पर मारा, जिससे उसका जबड़ा

अपनी जगह से हट गया और मुँह बिगड़ गया, किन्तु अजनबी अत्यन्त शान्ति के साथ खड़ा रहा।

उस समय उसके मस्तक से रक्त बह-बह कर उसकी दाढ़ी को तर कर रहा था। एक कान के ऊपर का भाग टूट कर लटक रहा था और उसमें से खून की धारा छूट रही थी। मुँह टेढ़ा हो जाने के कारण आकृति और भी भयानक हो रही थी, किन्तु वह आश्चर्य-चकित रूप से शान्त था।

फिर उसने दिलीप की आँखों-में-आँखें डालकर अपनी गम्भीर और भारी आवाज़ में कहा—"इस तरह नहीं दिलीप ! तुम अभी सिर्फ़ बच्चे हो, किन्तु जग्गा कोई बालकीय दुष्ट व्यवहार नहीं करना चाहता।" यह कहकर उसने एक घूँसा अपने मुँह पर दिया, और उसका चेहरा ठीक पहली दशा में आ गया—दिलीप जग्गा का नाम सुनकर भयभीत-सा हो गया।

अजनबी अपना बल्लम पकड़ कर बोला—

"तेरे पास बल्लम है ?"

"नहीं।"

"तलवार है ?"

"नहीं।"

"सफ़ाजंग ?"

"नहीं।"

"मगर लाठी तो है, वह तेरे गधे की पीठ पर बोरी में फँसी हुई।"

दिलीप मारे आश्चर्य के चुपचाप खड़ा था।

"आ।" अजनबी ने पुकार कर कहा—"लाठी ले आ। मैंने सुना है कि तू इलाके-भर में सबसे ज़्यादा तेज़ दौड़ने वाला जवान है, लेकिन मैं उम्मीद करता हूँ कि तेरा आत्म-सम्मान तुझे एक बुज़दिल की मौत कदापि न मरने देगा।"

दिलीप बहादुर था, किन्तु इस प्रकार के व्यक्ति से आज तक पाला

न पड़ा था।

जग्गा ने बल्लम उतार कर पृथक् रख दिया और केवल लाठी उठा ली और वे दोनों एक-दूसरे को ललकारते हुए मैदान में कूद पड़े।

उनकी ललकार के शब्द सुनकर पक्षी घोंसलों में फड़फड़ाने लगे। गीदड़ों ने "हुआ हो हुआ हो" ऊँचे स्वर में चिल्लाना शुरू किया। चारों ओर धूल-ही-धूल नज़र आने लगी।

लाठी से लाठी बज रही थी। दिलीप हल्का-फुल्का, चुस्त चालाक नवयुवक छोकरा, बिजली की तरह बेचैन, जोड़-जोड़ में पारा। जग्गा भारी-भरकम, बली, महाकाय, कुहना-मश्क देव। इतना मोटा होने पर भी अब भी जिस समय सरक लगाता तो ऐसा मालूम पड़ता जैसे पानी के तल पर ठीकरी फिसलती हुई चली जा रही हो। दिलीप ने दाँव लगाकर पहला वार किया। जग्गा उसे खाली देकर चिल्लाया।

"एक !"

दिलीप ने फिर वार किया। जग्गा उसे बचाकर गरजा—"दो !"

दिलीप ने तीसरा वार किया, जग्गा ने उसे भी रोका और कड़का—"तीन !" यह कह कर वह आगे की ओर लपका—"ओ सम्भल बे छोकरे, अब जग्गा वार करता है।"

पसीना के कारण दिलीप के हाथ से लाठी छूट गई। वह तत्काल छुरा लेकर झपटा। जग्गा ने एक पैर उसके पेट में मारा और वह लड़-खड़ाता हुआ पुल की दीवार से टकरा कर गिर पड़ा।

अब जग्गा के अधरों पर हत्यारी मुसकान अंकित हुई। उसने एक जंगली भेड़िये के समान कण्ठ से एक खौफ़नाक आवाज़ निकाली और फिर दोनों एड़ियाँ उठाकर आगे की ओर उचक कर उसने भरपूर वार किया। दिलीप ने छुरा सम्भाला और चीते के समान तड़प कर हवा में उछल गया। मगर कुहना-मश्क उस्ताद का वार अपना काम कर गया। शायद पहली सूरत में यह वार उसके सिर को तोड़ देता और लाठी उसक छाती तक पहुँच जाती, मगर अब भी लाठी काफ़ी जोर के साथ

सिर पर पड़ी। सिर फट गया और वह तड़प कर बारहसिंगे के समान नहर के किनारे पर जा गिरा। कुछ देर तक तड़पता रहा और फिर ठंडा पड़ गया।

गर्म-गर्म रक्त, बह-बह कर नहर में मिलने लगा। नहर के पानी की कल-कल का शब्द ऐसा मालूम पड़ता था जैसे खूनी पुल कहकहे लगा रहा हो।

कब्रिस्तान में पुरानी-पुरानी कब्रों के छिद्रों में से हवा सुबकियाँ लेती हुई चल रही थी। लाल-लाल चन्द्रमा बदली में से निकल आया किन्तु उसकी किरणें शीशम के घने पत्तों में उलझ के रह गईं।

जग्गा ने अत्यन्त संतोष के साथ अपने रक्त में पुते मस्तक को साफ़ किया, मुँह-हाथ धोया और कान पर पगड़ी फाड़ कर पट्टी बाँधी। उसने दिलीप की छाती पर हाथ रख के दिल की कम्पन सुनने का प्रयास किया। फिर उसने बल्लम उठाया और दिलीप को पीठ पर लाद कर खेतों की ओर चल खड़ा हुआ।

इस घटना के पच्चीस दिन बाद—

गाँव में संध्या होते ही मौनता छा जाती है, विशेष रूप से सर्दियों में तो लोग जल्दी ही घरों में घुस बैठते हैं।

गुरुनाम के यहाँ सभी लोग अपने-अपने कामों से छुट्टी पाकर बड़े कमरे में बैठे थे। स्त्रियाँ चरखा कात रही थीं। बड़े-बूढ़े बातों में तल्लीन थे और बच्चे शरारतों में व्यस्त। इतने में जग्गा ने भीतर प्रवेश किया।

कदाचित् डेढ़ वर्ष के बाद आज फिर उसके सबल हाथ में बल्लम चमक रहा था। सबने उसको देखकर प्रसन्नता प्रकट की।

गुरुनाम आश्चर्य से उसकी ओर देखने लगी। बेबे ने उसे बैठने के लिये कहा—किन्तु उसने बताया कि उसकी साँडनी बाहर खड़ी है और उसे जल्दी वापस जाना है।

कुछ क्षण के लिये उसने मौन धारण किया। फिर अत्यन्त संक्षिप्त

निर्णयात्मक भाव से कहना शुरू किया—"मैं आप लोगों से सिर्फ़ इतनी बात कहने के लिए आया हूँ कि आप गुरुनाम की शादी जिस शख़्स से करना चाहते हैं, वह हर्गिज़, हर्गिज़ नहीं हो सकती—बल्कि उसकी शादी उस शख़्स से होगी जिससे मैं चाहूँगा।"

सब लोग हैरान थे; क्योंकि वह जानते थे कि गुरुनाम का होने वाला पति वह स्वयं ही था। मगर चूँकि इन्हें यह भेद गुप्त रखने की कठोर चेतावनी दी गई थी, इसलिये वे चुप रहे।

"और वह शख़्स यह है।" यह कह कर उसने दरवाज़े की तरफ़ देखा और दिलीप अन्दर दाख़िल हुआ!

प्रत्येक व्यक्ति पर आश्चर्य और ख़ामोशी छा गई।

गुरुनाम किसी अज्ञात दुनिया में पहुँच गई। उसे शर्मा जाना चाहिये था मगर वह उठकर उसके निकट आ गई।

जग्गा ने दिलीप के कान में कहा—"अगर गुरुनाम को मुझसे मुहब्बत होती तो आज तुम ज़िन्दा नज़र न आते। दिलीप! तुम मर्द हो, मैंने अच्छी तरह से तुमको परख कर देख लिया है। मैं चाहता तो तुमको कत्ल कर डालता, मगर मर्दों से मुझको मुहब्बत है। अब जब कि तुम्हारी गुरुनाम तुम्हें सौंप रहा हूँ, आशा करता हूँ कि तुम मेरा भेद न प्रकट करोगे..."

दिलीप ने कृतज्ञता-भरी दृष्टि से अपने उपकारी की ओर देखा।

जग्गा ऊँची आवाज़ में बोला—"बापू! माँ!! बेबे!!! मैं इनकी शादी के लिये ज़रूरत से भी कहीं अधिक रुपया दूँगा और इनको बहुत-सी ज़मीन दूँगा।

बापू असल किस्सा भाँप गया। किन्तु सबको अधिक आश्चर्य इस बात पर था कि दिलीप ज़िन्दा क्योंकर हो गया? मशहूर हो चुका था कि दिलीप को डाकुओं ने ख़ूनी पुल पर कत्ल कर दिया था।

दिलीप ने किस्सा गड़कर सुना दिया कि ख़ूनी पुल पर डाकुओं ने उसको घेर लिया था। इस लड़ाई में वह सख़्त ज़ख्मी हुआ और डाकुओं

के हाथ कत्ल होने ही वाला था कि सरदार धर्मसिंह वहाँ पहुँच गये और वह इस प्रकार भीषणता से लड़े कि डाकुओं के छक्के छूट गये और उनको भागते ही बना। फिर वह उसको अपने घर ले गये और सेवा-उपचार करते रहे।

जग्गा की मूँछों के नीचे उसके अधरों पर एक कड़वी मुसकान पैदा हुई।

गुरुनाम की आँखों में आँसू आ गये।

वह सुध-बुध खोकर आगे बढ़ी। उसने जग्गा का भद्दा हाथ अपने सुकोमल हाथों में ले लिया। पहले उसने जग्गा की ऊँची छाती और उस के असाधारण चौड़े कन्धों का निरीक्षण किया और फिर गोया निश्चिन्त होकर भर्राई हुई आवाज़ में बोली—"तुम कितने अच्छे हो···तुम यहीं हमारे पास ही रहा करो।"

निकट था कि जग्गा चीखें मार-मार कर रो पड़े, किन्तु जल्दी से पगड़ी के छोर में मुँह छिपा कर वह बवंडर की तरह द्वार में से बाहर निकल गया।

शादी हो गई।

कुछ समय पश्चात् रात के समय गुरुनाम बापू के साथ घर से बाहर करेले की बेल के पास खड़ी थी। दूर से धूल उड़ी। कुछ साँडनी सवार उदित हुए। उनकी सजी हुई साँडनियाँ, मर्दाना और देवकाय सूरतें, चमकते हुए बल्लम विचित्र दृश्य उपस्थित कर रहे थे। उनका प्रधान नेता तो असाधारण तौर पर चौड़ा-चकला व्यक्ति था। गुरुनाम उसे देखते ही चिल्ला उठी—"बापू वे कौन लोग हैं ?···यह सबसे आगे वाला शख्स तो धर्मसिंह दिखाई पड़ता है।"

"नहीं बेटी, नहीं, वह धर्मसिंह नहीं।" यह कहकर उसने अपनी पोती का सिर छाती से लगा लिया और फिर बबूल के पेड़ों के झुँड में अदृश्य होते हुए साँडनी सवारों की तरफ़ स्वप्नवत् दृष्टि से देखते हुए बड़बड़ाया—"आज जग्गा डाकू डाका डालने के लिये जा रहा है।"

परमेश्वर सिंह

अहमद नदीम क़ासमी

अख़्तर अपनी माँ से यों ही अचानक बिछुड़ गया, जैसे भागते हुए किसी की जेब से रुपया गिर पड़ता है। अभी था, अभी ग़ायब। ढूँढ़ियाँ पड़ीं मगर बस इस हद तक कि लिये-पिटे काफ़िले के आख़िरी सिरे पर एक हंगामा; साबुन के झाग की तरह उठा और बैठ गया। "कहीं आ ही रहा होगा।" किसी ने कह दिया—"हज़ारों का तो क़ाफ़िला है।" और अख़्तर की माँ इस तसल्ली की लाठी थामे पाकिस्तान की ओर चली आई थी, "आ रहा होगा।" वह सोचती—"कोई तितली पकड़ने निकल गया होगा और माँ को न पाकर रोया होगा और फिर···फिर अब कहीं आ ही रहा होगा। समझदार है, पाँच साल से तो कुछ ऊपर हो चला है, आ जायगा। वहाँ पाकिस्तान में ज़रा ठिकाने से बैठूँगी तो मैं ढूँढ़ लूँगी।"

परन्तु अख़्तर तो सीमा से कोई पन्द्रह मील उधर यों ही, बस किसी कारण के बिना इतने बड़े क़ाफ़िले से कट गया था। अपनी माँ के ख़याल के अनुसार उसने किसी तितली का पीछा किया या किसी खेत में से गन्ना तोड़ने लगा, और तोड़ता रह गया। बहरहाल जब वह रोता-चिल्लाता एक ओर भागा जा रहा था तो कुछ सिखों ने उसे घेर लिया था और अख़्तर ने आवेश में आकर कहा था—"मैं मार दूँगा।" और यह कह कर सहम गया था। सब अपरिचित सिख हँस पड़े थे, सिवाय एक सिख के जिसका नाम परमेश्वरसिंह था। ढीली-ढाली पगड़ी में से उसके उलझे हुए केश झाँक रहे थे। और जूड़ा तो बिलकुल नंगा था।

वह बोला—"हँसो नहीं यारो, इस बच्चे को भी तो उसी वाहगुरुजी ने पैदा किया है जिसने तुम्हें और तुम्हारे बच्चों को पैदा किया है।"

एक नवयुवक सिख, जिसने अब तक कृपाण निकाल ली थी, बोला—"ज़रा ठहर परमेश्वरे ! कृपाण अपना धर्म पूरा कर ले; फिर हम अपने धर्म की बात करेंगे।"

"मारो नहीं यारो," परमेश्वरसिंह की आवाज़ में पुकार थी। "इसे मारो नहीं ! इतना ज़रा-सा तो है ! और इसे भी तो उसी वाह-गुरु जी ने पैदा किया है जिसने······"

"पूछ लेते हैं इसी से," एक और सिख बोला। फिर उसने सहमे हुए अख़्तर के पास जाकर कहा—"बोलो, तुम्हें किसने पैदा किया ?"

"ख़ुदा ने।"

अख़्तर ने सारी उदासी को निगलने की कोशिश की जो उसकी ज़बान की नोक से लेकर उसकी नाभि तक फैल चुकी थी। आँखें झपक कर उसने उन आँसुओं को गिरा देना चाहा जो रेत की तरह उसके पपोटों में खटक रहे थे। उसने परमेश्वरसिंह को यों देखा जैसे वह माँ को देख रहा है। मुँह में गये एक आँसू को थूक डाला और बोला—"पता नहीं !"

"लो और सुनो !" किसी ने कहा और अख़्तर को गाली देकर हँसने लगा।

अख़्तर ने अभी अपनी बात पूरी भी नहीं की थी, बोला—"अम्मा तो कहती है कि मैं भूसे की कोठरी में पड़ा मिला था।"

सब सिख हँसने लगे, परन्तु परमेश्वरसिंह बच्चों की तरह कुलबुला कर कुछ इस तरह रोया कि दूसरे सिख भौंचक्का-से रह गये, और परमेश्वरसिंह रोनी आवाज़ में जैसे विनय करने लगा—"सब बच्चे एक-से होते हैं। यारो, मेरा कर्तारा भी तो यही कहता था। वह भी तो उसकी माँ को भूसे की कोठरी में पड़ा मिला था।"

कृपाण म्यान में चली गई। सिखों ने परमेश्वरसिंह से अलग थोड़ी

देर खुसर-फुसर की। फिर एक सिख आगे बढ़ा। बिलखते हुए अख्तर को बाज़ू से पकड़े वह चुपचाप परमेश्वरसिंह के पास आया और बोला—"ले परमेश्वरे, ले सम्भाल इसे, केश बढ़वा कर इसे अपना कर्तारा बना ले; ले पकड़।"

परमेश्वरसिंह ने अख्तर को यों झपट कर उठा लिया कि उसकी पगड़ी खुल गई और केशों की लटें लटकने लगीं। उसने अख्तर को पागलों की तरह चूम, उसे अपनी छाती से चिपकाया और फिर उसकी आँखों-आँखें डालकर और मुसकराकर कुछ ऐसी बातें सोचने लगा, जिन्होंने उसकी आकृति को चमका दिया। फिर उसने पलट कर दूसरे सिखों की तरफ़ देखा। अचानक वह अख्तर को नीचे उतार कर सिखों की तरफ़ लपका मगर उनके पास से गुज़र कर दूर तक भागा चला गया। झाड़ियों के एक झुण्ड में बन्दरों की तरह कूदता और झपटता रहा। उसके केश उसकी इस लपक-झपक का साथ देते रहे। दूसरे सिख हैरान खड़े उसे देखते रहे। फिर वह एक हाथ को दूसरे हाथ पर रखे भागा हुआ वापस आया। उसकी भीगी हुई दाढ़ी में फँसे हुए होंठों पर मुसकराहट थी और लाल आँखों में चमक। वह बुरी तरह हाँफ रहा था। अख्तर के पास आकर वह घुटनों के बल बैठ गया और बोला—"नाम क्या है तुम्हारा ?"

'अख्तर !" अब कि अख्तर की आवाज़ भर्राई हुई नहीं थी।

"अख्तर बेटे !" परमेश्वरसिंह ने बड़े प्यार से कहा—"ज़रा मेरी उँगलियों में से झाँको तो।" अख्तर ज़रा-सा झुक गया। परमेश्वरसिंह ने दोनों हाथों में ज़रा-सी झरी पैदा की और तुरन्त बन्द कर ली—"आहा !" अख्तर ने ताली बजाकर अपने हाथों को परमेश्वरसिंह के हाथों की तरह बन्द कर लिया और आँसुओं में मुसकरा कर बोला—

"तितली।'

"लोगे ?" परमेश्वरसिंह ने पूछा।

"हाँ !" अख्तर ने अपने हाथों को मला।

"लो।" परमेश्वरसिंह ने अपने हाथों को खोला—अख्तर ने तितली पकड़ने की कोशिश की किन्तु वह रास्ता पाते ही उड़ गई और अख्तर की उँगलियों की पोरों पर अपने परों के रंगों के कण छोड़ गई। अख्तर उदास हो गया और परमेश्वरसिंह दूसरे सिखों की तरफ़ देखकर बोला—"सब बच्चे एक-से क्यों होते हैं यारो! कर्तारा की तितली भी उड़ जाती थी, तो यों ही मुँह लटका लेता था।"

"परमेश्वरसिंह तो आधा पागल हो गया।" नवयुवक सिख ने अप्रियता से कहा और फिर सारा गिरोह वापस जाने लगा।

परमेश्वरसिंह ने अख्तर को कन्धे पर बिठा लिया और जब उसी ओर चलने लगा, जिधर दूसरे सिख गये थे तो अख्तर फफक-फफक कर रोने लगा—"हम अम्मा के पास जायेंगे, अम्मा के पास जायेंगे।" परमेश्वर-सिंह ने हाथ उठा कर उसे थपकने की कोशिश की मगर अख्तर ने उसका हाथ झटक दिया। फिर जब परमेश्वरसिंह ने कहा कि—'हाँ बेटे! तुम्हें तुम्हारी अम्मा के पास ही लिये चलता हूँ।" तो अख्तर चुप हो गया। केवल कभी-कभी सिसक लेता था और परमेश्वरसिंह की थपकियों को बड़ी अरुचि से सहन करता जा रहा था।

परमेश्वरसिंह उसे अपने घर ले आया। पहले यह किसी मुसलमान का घर था। लुटा-पिटा परमेश्वरसिंह जब ज़िला लाहौर से ज़िला अमृतसर में आया था तो गाँव वालों ने उसे यह मकान एलौट कर दिया था। अपनी स्त्री और बेटी समेत जब इस चारदीवारी में उसने प्रवेश किया था तो ठिठक कर रह गया था, उसकी आँखें पथरा-सी गई थीं। वह बड़ी आग्रह-भरी कानाफूसी में बोला था—"यहाँ कोई चीज़ कुरआन पढ़ रही है।"

ग्रन्थीजी और गाँव के दूसरे लोग हँस पड़े थे। परमेश्वरसिंह की स्त्री ने उन्हें पहले से बता दिया था—"कर्तारसिंह के बिछुड़ते इन्हें कुछ हो गया है, जाने क्या हो गया है इन्हें।" उसने कहा था—"वाह गुरुजी झूठ न बुलवायें तो वहाँ दिन में कोई दस बार तो ये कर्तारसिंह को गधों

की तरह पीट डालते थे और जब कर्तारसिंह से बिछुड़े हैं तो मैं तो रो-धो ली पर इनका रोने से भी जी हल्का नहीं हुआ। वहाँ मजाल है जो बेटी अमरकौर को मैं भी ज़रा गुस्से से देख लेती तो फिर जाते थे, कहते थे—"बेटी को बुरा मत कहो, बेटी बड़ी सरल स्वभाव की होती है, यह तो एक मुसाफ़िर है बेचारी। हमारे घरौंदे में सुस्ताने बैठ गई समय आयेगा तो चली जायेगी।" और अब अमरकौर से ज़रा-सा भी कोई अपराध हो जाये तो आपे में ही नहीं रहते। जब तब बक देते हैं कि बेटियाँ और पत्नियाँ अपहरण होते सुना था यारो, यह नहीं सुना था कि पाँच-छः बरस के बेटे भी उठ जाते हैं।"

वह एक महीने से इस घर में ठहरा हुआ था, मगर प्रत्येक रात उसकी आदत थी कि पहले सोते में उग्ररूप से करवटें बदलता, फिर बड़बड़ाने लगता और फिर उठ बैठता और बड़ी भयभीत कानाफूसी में पत्नी से कहता—"सुनती हो ! यहाँ कोई चीज़ कुरआन पढ़ रही है।" बीबी उसे केवल "हूँ !" से टाल कर सो जाती थी, परन्तु अमरकौर को इस कानाफ़ूसी के बाद रात-भर नींद न आती। उसे अन्धेरे में बहुत सी परछाइयाँ हर तरफ़ कुरआन पढ़ती नज़र आतीं और जब ज़रा सी पौ फटती तो वह कानों में उँगलियाँ दे लेती थी। वहाँ जिला लाहौर में उनका घर मस्जिद के पड़ोस ही में था। जब सुबह अज़ान होती थी तो कैसा मजा आता था। ऐसा लगता था जैसे पूरब से फूटता हुआ उजाला गाने लगा है। फिर जब उसकी पड़ोसिन प्रीतमकौर को कुछ नवयुवकों ने ख़राब करके चीथड़े की तरह घूरे पर फेंक दिया था तो जाने क्या हुआ कि अज़ान की आवाज़ में भी उसे प्रीतमकौर की चीख़ सुनाई दे जाती थी। अज़ान की कल्पना तक उसे भयभीत कर देती थी और वह यह भूल जाती थी कि अब उनके पड़ोस में मस्जिद नहीं है। यों ही कानों में उँगलियाँ दिए हुए वह सो जाती और रात-भर जागते रहने के कारण दिन चढ़े तक सोई रहती और परमेश्वरसिंह इस बात पर बिगड़ जाता—"ठीक है, सोये नहीं तो और क्या करे ? निकम्मी तो होती ही

है ये छोकरियां, लडका होता तो अब तक जाने कितने काम कर चुका होता यारो ।"

परमेश्वरसिह ने आँगन मे प्रवेश किया तो आज स्वभाव-विरुद्ध उसके होठो पर मुसकान थी । उसके खुले केश कंधे-समेत उसकी पीठ और कंधे पर बिखरे हुए थे और उसका एक हाथ अख्तर की कमर को थपकता जा रहा था । उसकी पत्नी एक ओर बैठी सूप मे गेहूँ पछोर रही थी । उस के हाथ जहाँ थे वही रुक गए और वह टुकुर-टुकुर परमेश्वरसिह को देखने लगी । फिर वह सूप पर से कूदती हुई आई और बोली—'यह कौन है ?"

परमेश्वरसिह नियमानुसार मुसकराते हुए बोला—"डरो नही बेवकूफ, इसकी आदत बिलकुल कर्तारा की-सी है । यह भी अपनी माँ को भूसे की कोठरी मे पडा मिला था । यह भी तितलियो का आशिक है, इसका नाम अख्तर है ।"

"अख्तर !" पत्नी के तेवर बदल गए ।

"तुम इसे अख्तरसिह कह लेना ।" परमेश्वरसिह ने स्पष्टता की—"और फिर केशो का क्या है ? दिनो मे बढ आते है, कडा और कच्छा पहना दो । कघा केशो के बढते ही लग जायेगा ।"

"पर यह है किसका ?" पत्नी ने अधिक स्पष्टता चाही ।

"किसका है ?" परमेश्वरसिह ने अख्तर को कन्धे पर से उतार कर उसे जमीन पर खडा कर दिया और उसके सिर पर हाथ फेरने लगा—"वाह गुरुजी का है, हमारा अपना है, और फिर यारो यह स्त्री इतना भी नही देख सकती कि अख्तर के माथे पर यह जो ज़रा-सा तिल है, कर्तारा के भी तो एक तिल था और यही था । जरा बडा था, पर हम उसे यही तिल पर ही चूमते थे और यह अख्तर के कानो की लवे गुलाब के फूलो की तरह गुलाबी है तो यारो यह स्त्री यह तक नही सोचती कि कर्तारा के कानो की लवे भी तो ऐसी ही थी । अन्तर केवल इतना है कि वह जरा मोटी थी यह ज़रा पतली हैं और "

अख़्तर अब तक मारे आश्चर्य के चुपचाप बैठा था। कुलबुला उठा—"हम यहाँ नहीं रहेंगे। हम अम्मा पास जायेंगे, अम्मा के पास।"

परमेश्वरसिंह ने अख़्तर का हाथ पकड़ कर उसे पत्नी की तरफ़ बढ़ाया—"अरी लो, यह अम्मा पास जाना चाहता है।"

"तो जाये।" पत्नी की आँखों में और आकृति पर वही भूत आ गया था, जिसे कर्तारसिंह अपनी आँखों और आकृति में से नोंचकर बाहर खेतों में झिटक आया था। "डाका डालने गया सूरमा और उठा लाया यह हाथ-भर का लौंडा," अरे कोई लड़की ही उठा लाता तो हज़ार में न सही, एक-दो सौ में ही बिक जाती। इस उजड़े घर का खाट-खटोला बन जाता। और फिर······पगले ···तुम्हें तो कुछ हो गया है। देखते नहीं यह लड़का मुसल्ला है। जहाँ से उठा लाये हो वहीं डाल आओ और ख़बरदार जो इसने मेरे चौके में पाँव रखा।"

परमेश्वरसिंह ने प्रार्थना की—"कर्तारा और अख़्तर को एक ही वाह गुरुजी ने पैदा किया है; समझीं ?"

"नहीं !" अब की बार बीवी चीख़ पड़ी—"मैं नहीं समझी, न कुछ समझना चाहती हूँ। मैं रात-ही-रात झटका कर डालूँगी इसका; काट कर फेंक दूँगी; उठा लाया है वहाँ से। ले जा इसे, फेंक दे बाहर !"

"तुम्हें न फेंक दूँ बाहर ?" अब की बार परमेश्वरसिंह बिगड़ गया। "तुम्हारा न कर डालूँ झटका ?" वह स्त्री की ओर बढ़ा और पत्नी अपनी छाती को दोनों हाथों से पीटती, चीख़ती-चिल्लाती भागी। पड़ोस से अमरकौर दौड़ती आई। उसके पीछे गली की दूसरी स्त्रियाँ भी आ गईं। पुरुष भी एकत्र हो गये और परमेश्वरसिंह की स्त्री पिटने से बच गई। फिर सबने उसे समझाया कि नेक काम है; इस मुसलमान को सिख बनाना कोई साधारण काम तो नहीं। पुराना ज़माना होता तो अब तक परमेश्वरसिंह गुरु मशहूर हो चुका होता। पत्नी को धीरज बँधा या और अमरकौर एक कोने में बैठी घुटनों में सिर दिये रोती रही। अचानक परमेश्वरसिंह की गरज ने सारे जन-समूह को हिला दिया।

"अख्तर किधर गया ?" और चिल्लाया—"अरे वह किधर गया हमारा अख्तर, अरे वह तुम में से किसी क़साई के हत्थे तो नहीं चढ़ गया यारो, "अख्तर ! अख्तर !!" वह चीखता हुआ मकान के कोनों-खुदरों में झाँकता हुआ बाहर भाग गया। बच्चे मारे कुतुहल के उसके साथ थे। स्त्रियाँ छतों पर चढ़ गई थीं। और परमेश्वरसिंह गलियों में से बाहर खेतों में निकल गया था। "अरे मैं तो उसे अम्मा पास ले चलता यारो ! अरे वह गया कहाँ ? "अख्तर ! अख़्तर !!"

"मैं तुम्हारे पास नहीं आऊँगा।" पगडंडी के एक मोड़ पर ज्ञानसिंह के गन्ने के खेत की आड़ से रोते हुए अख्तर ने परमेश्वरसिंह को डाँट दिया। "तुम तो सिख हो।"

"हाँ बेटे, सिख तो हूँ।" परमेश्वरसिंह ने जैसे विवश होकर अपराध मान लिया।

"तो फिर हम नहीं आयेंगे।" अख़्तर ने पुराने आँसुओं को पोंछ कर नये आँसुओं के लिए रास्ता साफ़ किया।

"नहीं आओगे ?" परमेश्वरसिंह का स्वर अचानक बदल गया।

"नहीं !"

"नहीं आओगे ?"

"नहीं ! नहीं !! नहीं !!"

"कैसे नहीं आओगे ?" परमेश्वरसिंह ने अख़्तर को कान से पकड़ा और फिर निचले होंठ को दाँतों से दबाकर उसके मुँह पर चटाख़ से एक थप्पड़ मार दिया।

अख़्तर यों सहम गया जैसे एकदम उसका सारा रक्त निचुड़ कर रह गया है। फिर एकाएकी वह ज़मीन पर गिर कर पाँव पटकने और खाक उड़ाने और बिलख-बिलख कर रोने लगा। "नहीं चलता तुम सिख हो। मैं सिखों के पास नहीं जाऊँगा। मैं अपनी अम्मा पास जाऊँगा। मैं तुम्हें मार दूंगा।"

और जैसे अब परमेश्वरसिंह के सहमने की बारी थी। उसका भी

रक्त जैसे निचुड़ कर रह गया था। उसने अपने हाथ को दाँत में जकड़ लिया। उसके नथने फड़कने लगे और फिर इस ज़ोर से रो दिया कि खेत की परली मेंड़ पर आते हुए कुछ पड़ोसी और उनके बच्चे भी सहम कर रह गये और ठिठक गये। परमेश्वरसिंह घुटनों के बल अख़्तर के सामने बैठ गया। बच्चों की तरह यों सिसक-सिसक कर रोने लगा कि उसका निचला होंठ भी बच्चों की तरह लटक आया और फिर बच्चों की-सी रोनी आवाज़ में बोला—"मुझे मुआफ़ कर दे अख़्तर! मुझे तुम्हारे खुदा की कसम, मैं तुम्हारा दोस्त हूँ। तुम अकेले यहाँ से जाओगे तो तुम्हें कोई मार देगा। फिर तुम्हारी माँ पाकिस्तान से आकर मुझे मारेगी। मैं खुद जाकर तुम्हें पाकिस्तान छोड़ आऊँगा। सुना? सुन रहे हो ना? फिर अगर वहाँ तुम्हें एक लड़का मिल जाये ना कर्तारा नाम का? तो तुम उसे इधर इस गाँव में छोड़ जाना, अच्छा।"

"अच्छा!" अख़्तर ने उल्टे हाथों से आँसू पोंछते हुए परमेश्वरसिंह से सौदा कर लिया।

परमेश्वरसिंह ने अख़्तर को कन्धे पर बिठा लिया और चला। किन्तु एक ही पग उठाकर रुक गया। सामने बहुत से बच्चे और कुछ पड़ोसी खड़े उसके तमाम कार्य देख रहे थे। अधेड़ आयु का एक पड़ोसी बोला—"रोते क्यों हो परमेश्वरे! कुल एक महीने की तो बात है। एक महीने में इसके केश बढ़ आयेंगे तो बिलकुल कर्तारा लगेगा।"

कुछ कहे बिना वह तेज़-तेज़ क़दम उठाने लगा। फिर एक स्थान पर रुक कर उसने पलट कर अपने पीछे आने वाले पड़ोसियों की तरफ़ देखा—"तुम कितने ज़ालिम लोग हो यारो! अख़्तर को कर्तारा बनाते हो और अगर उधर कोई कर्तारा को अख़्तर बना ले तो उसे ज़ालिम ही कहोगे ना?" फिर उसकी आवाज़ में गरज आ गई। "यह लड़का मुसलमान ही रहेगा। दरबार साहब की सौगन्ध, मैं कल ही अमृतसर जाकर इसके अंग्रेज़ी बाल बनवा लाऊँगा। तुमने मुझे क्या समझ रखा है, ख़ालसा हूँ, सीने में शेर का दिल है, मुर्गी का नहीं।"

परमेश्वरसिह अपने घर में आते ही अभी अपनी स्त्री और बेटी को अख्तर के सत्कार के विषय मे आज्ञाये दे रहा था कि गाँव के ग्रन्थी सरदार सतोखसिह अन्दर आये और बोले—

"परमेश्वरसिह !"

"जी !" परमेश्वरसिह ने पलट कर देखा-- ग्रन्थीजी के पीछे उस के सब पडोसी भी थे ।

"देखो !" ग्रन्थीजी ने बडे दब-दबे से कहा—"कल से यह लडका खालसा की-सी पगडी बाँधेगा, कडा पहनेगा, धर्मशाला आयेगा और इसे प्रसाद खिलाया जायेगा। इसके केशो को कैंची नही छुएगी ! छू गई तो कल ही यह घर खाली कर दो, समझे ?"

"जी !" परमेश्वरसिह ने धीरे से कहा ।

"हाँ !" ग्रन्थीजी ने दूसरी जरब लगाई ।

"ऐसा ही होगा ग्रन्थीजी !" परमेश्वरसिह की स्त्री बोली—"पहले ही इसे रातो को घर के कोने-कोने से कोई चीज कुरआन पढती सुनाई देती है । लगता है पिछले जन्म मे यह मुसल्ला रह चुका है । अमरकौर बेटी ने तो जब से यह सुना है कि हमारे घर मे मुसल्ला छोकरा आया है तो बैठी रो रही है । कहती है कि घर पर कोई आफत आयेगी । परमेश्वरे ने आपका कहा न माना तो मैं भी धर्मशाला चली आऊँगी और अमरकौर भी । फिर यह पडा इस छोकरे को काटे । मुआ निकम्मा ! वाह गुरुजी का भी शील-सकोच नही ।"

"वाह गुरुजी का कौन शील-संकोच नही करता गधी ।" परमेश्वर-सिह ने ग्रन्थीजी की बात का क्रोध पत्नी पर निकाला । फिर वह देर तक धीरे-धीरे गालियाँ देता रहा । कुछ देर के पश्चात् वह उठ कर ग्रन्थी-जी के सामने आ गया—"अच्छा जी ! अच्छा ।" उसने कहा, और कुछ इस प्रकार कहा कि ग्रन्थीजी पडोसियों के साथ तत्काल प्रस्थान कर गये ।

कुछ ही दिनो मे अख्तर को दूसरे सिख लड़को मे पहचानना मुश्किल

हो गया। वही कानों की लवों तक कस कर बँधी हुई पगड़ी। वही हाथ का कड़ा और वही कछेरा। केवल जब वह घर में आकर पगड़ी उतारता था तो उसके सिख न होने का भेद खुलता था। किन्तु उसके बाल धड़ाधड़ बढ़ रहे थे। परमेश्वरसिंह की स्त्री उन बालों को छूकर बहुत प्रसन्न होती थी। "ज़रा इधर आ अमरकौर ! यह देख केश बन रहे हैं, फिर एक दिन जूड़ा बनेगा, कंघा लगेगा और इसका नाम रखा जायेगा कर्तारसिंह।"

"नहीं माँ।" अमरकौर वहीं से उत्तर देती—"जैसे वाह गुरुजी एक हैं, ग्रन्थ साहब एक हैं और चन्द्रमा एक है उसी तरह कर्तारा भी एक ही है। मेरा नन्हा-मुन्ना भाई !" वह फूट-फूट कर रो देती और मचल कर कहती—"मैं इस खिलौने से नहीं बहलूँगी माँ ! मैं जानती हूँ यह मुसल्ला है, और जो कर्तारा होता है वह मुसल्ला नहीं होता।"

"मैं कब कहती हूँ कि यह सचमुच का कर्तारा है। मेरा चाँद-सा लाड़ला बच्चा !" परमेश्वरसिंह की पत्नी भी रो देती। दोनों अख़्तर को अकेला छोड़ कर किसी एकान्त स्थान में बैठ जातीं और खूब रोतीं। एक-दूसरे को धीरज देतीं और फिर बिलख-बिलख कर रोने लगतीं। वे अपने कर्तारा के लिए रोती थीं। अख़्तर कुछ दिनों तक अपनी माँ के लिये रोता रहा और अब किसी और बात पर रोता था।

जब परमेश्वरसिंह शरणार्थियों की सहायक पंचायत से कुछ भोजन का सामान या कपड़ा लेकर आता तो अख़्तर भाग कर जाता। उसकी टाँगों से लिपट जाता और रो-रो कर कहता—"यह मेरे-सिर पर पगड़ी बाँधो परसू ! मेरे केश बढ़ा दो ! मुझे कंघा ख़रीद दो !"

परमेश्वरसिंह उसे छाती से लगा लेता और भर्राई हुई आवाज़ में कहता—"यह सब हो जायेगा बच्चे ! सब कुछ हो जायेगा पर एक बात नहीं होगी। वह बात कभी नहीं होगी। वह नहीं होगा मुझसे समझे ? ये केश-वेश सब बढ़ आयेंगे।"

अख़्तर अब अपनी माँ को बहुत कम याद करता था। जब तक

परमेश्वर घर में रहता वह उससे चिपटा रहता और जब वह कहीं बाहर जाता तो अख़्तर उसकी स्त्री और अमरकौर की तरफ़ इस प्रकार देखता रहता जैसे उनसे केवल एक प्यार की भीख माँग रहा हो। परमेश्वरसिंह की पत्नी उसे नहलाती, उसके कपड़े धोती और फिर उसके बालों में कंघी करते हुए रोने लगती और रोती रह जाती। अलबत्ता अमरकौर ने अख़्तर की तरफ़ अब भी देखा नाक उछाल दी। आरम्भ में तो उसने अख़्तर को एक धमूका भी जड़ दिया था। परन्तु जब अख़्तर ने परमेश्वर-सिंह से उसकी शिकायत की तो परमेश्वरसिंह बफर गया और अमरकौर को बड़ी नंगी-नंगी गालियाँ दीं। उसकी ओर यों बढ़ा कि अगर उसकी स्त्री रास्ते में उसके पाँव न पड़ जाती तो वह बेटी को उठा कर दीवार से गली में पटक देता—"उल्लू की पट्ठी !" उस दिन उसने कड़क कर कहा था—"सुना तो यही था कि लड़कियाँ उठ रही हैं; पर यहाँ यह मुसटण्डी हमारे साथ लगी चली आई और उठ गया पाँच साल का लड़का जिसे अभी अच्छी तरह नाक तक पोंछना नहीं आता था। अजब अन्धेर है यारो !" इस घटना के पश्चात् अमरकौर ने अख़्तर पर हाथ तो खैर नहीं उठाया मगर उसकी घृणा दूनी हो गई।"

एक दिन अख़्तर को बड़े ज़ोर का ज्वर हो आया। परमेश्वरसिंह वैद्य के पास चला गया। उसके जाने के कुछ देर बाद उसकी स्त्री पड़ोसिन से पिसी हुई सौंफ़ माँगने चली गई। अख़्तर को प्यास लगी—"पानी" उसने कहा। फिर कुछ देर बाद उसने लाल-लाल सूजी-सूजी आँखें खोलीं, इधर-उधर देखा और "पानी" का शब्द एक कराह बन कर उसके कंठ से निकला। कुछ देर के बाद वह लिहाफ़ को एक तरफ़ झटक कर उठ बैठा। अमरकौर सामने दहलीज़ पर बैठी खजूर के पत्तों से पंखा बना रही थी। "पानी दे !" अख़्तर ने उसे डाँटा। अमरकौर ने भौंहें सिकोड़ कर उसे घूर कर देखा और अपने काम में जुट गई। अब अख़्तर चिल्ला उठा—"पानी देती है कि नहीं। पानी दे वर्ना मारूँगा।" अमरकौर ने इस बार उसकी तरफ़ देखा ही नहीं, बोली—

"मार तो सही, तू कर्तारा तो नहीं कि मैं तेरी मार सह लूँगी, मैं तो तेरी बोटी-बोटी कर डालूँ।" अख़्तर बिलख-बिलख कर रो दिया और आज बहुत दिनों के बाद उसने अपनी माँ को याद किया। फिर जब परमेश्वरसिंह दवा ले आया और उस की स्त्री भी पिसी हुई सौंफ़ लेकर आ गई तो अख़्तर ने रोते-रोते बुरी हालत बना ली। वह सिसक-सिसक कर कह रहा था—"हम तो अब अम्मा पास चलेंगे। यह अमरकौर सुअर की बच्ची तो पानी भी नहीं देती। हम तो अम्मा पास जायेंगे।" परमेश्वरसिंह ने अमरकौर की तरफ़ क्रोध से देखा, वह रो रही थी और अपनी माँ से कह रही थी—"क्यों पानी पिलाऊँ ? कर्तारा भी तो इसी तरह पानी माँग रहा होगा किसी से। किसी को उस पर तरस न आये तो हमें क्यों तरस आये इस पर ? हाँ !"

परमेश्वरसिंह अख़्तर की तरफ़ बढ़ा और अपनी स्त्री की ओर संकेत करते हुए बोला—"यह भी तो तुम्हारी अम्मा है बेटे !"

"नहीं।" अख़्तर बड़े क्रोध से बोला—"यह तो सिख है, मेरी अम्मा तो पाँच वक्त नमाज़ पढ़ती है और बिसमिल्लाह कह कर पानी पिलाती है।"

परमेश्वरसिंह की पत्नी शीघ्रता से एक प्याला भर कर लाई तो अख़्तर ने प्याले को दीवार पर दे मारा और चिल्लाया—'तुम्हारे हाथ से नहीं पियेंगे। तुम तो अमरकौर सुअर की बच्ची की माँ हो। हम तो परमू के हाथ से पियेंगे।"

"यह भी तो मुझ सुअर की बच्ची का बाप है।" अमरकौर ने जलकर कहा।

"तो हुआ करे।" अख़्तर बोला—"तुम्हें इससे क्या ?"

परमेश्वरसिंह के चेहरे पर प्रेम-चिह्न धूप-छाँव की तरह अंकित हो गये और वह अख़्तर के अभिप्रायों पर मुसकराया भी और रो भी दिया। फिर उसने अख़्तर को पानी पिलाया, उसके माथे को चूमा, उसकी पीठ पर हाथ फेरा और उसे बिस्तर पर लिटा कर उसके सिर को शनैः-शनैः

खुजाता रहा और कही शाम को जाकर उसने पहलू बदला। उस समय अख्तर का ज्वर उतर चुका था और वह बडे मजे से सो रहा था।

आज बहुत दिनो के बाद रात को परमेश्वरसिह भडक उठा और अत्यन्त धीमे स्वर मे बोला—"अरी सुनती हो! यहाँ कोई चीज कुरआन पढ रही है।"

पत्नी ने पहले तो परमेश्वरसिह की पुरानी आदत कह कर टालना चाहा, फिर एक दम बडबडा कर उठी और अमरकौर की खाट की ओर हाथ बढा कर उसे धीरे-धीरे से जगाकर आहिस्ता से बोली—"बेटी!"

"क्या है माँ।" अमरकौर चौक उठी।

और उसने कानाफूसी की—"सुनो, सचमुच कोई चीज कुरआन पढ रही है।"

यह रात का सन्नाटा बडा भयानक था, अमरकौर की चीख उससे भी अधिक भयानक थी। और फिर अख्तर की चीख अत्यन्त भयानक थी।

"क्या हुआ बेटा?" परमेश्वरसिह तडप कर उठा और अख्तर की खाट पर जाकर उसे अपनी छाती से चिपका लिया। "डर गये बेटा?"

"हाँ!" अख्तर लिहाफ मे से सिर निकाल कर बोला—"कोई चीज़ चीखती थी।"

"अमरकौर चीखती थी।" परमेश्वरसिह ने कहा—"हम सब यो समझे जैसे कोई चीज़ कुरआन पढ रही है।"

"मैं पढ रहा था!" अख्तर बोला।

अब की अमरकौर के मुँह से हल्की-सी चीख निकल गई।

पत्नी ने जल्दी से दिया जला दिया और अमरकौर की खाट पर बैठ कर वे दोनो अख्तर को यो देखने लगी जैसे वह अभी धुआँ बनकर दरवाज़े की झरियो से बाहर उड जायगा और बाहर से एक डरावनी आवाज़ आयेगी—"जिन्न हूँ, मैं कल रात फिर आकर कुरआन पढूँगा।"

"क्या पढ़ रहे थे भला ?" परमेश्वरसिंह ने पूछा।

"पढ़ूँ ?" अख़्तर ने पूछा।

"हाँ, हाँ !" परमेश्वरसिंह ने बड़े चाव से कहा। और अख़्तर कुल हो अल्लाह अहद पढ़ने लगा।

अहद पर पहुँच कर उसने अपने गले में छू की और फिर परमेश्वरसिंह की तरफ़ मुसकराकर देखते हुए बोला—"तुम्हारे सीने पर भी छू कर दूँ ?"

"हाँ, हाँ !" परमेश्वरसिंह ने गले का बटन खोल दिया और अख़्तर ने छू कर दी।

अब की बार अमरकौर ने बड़ी मुश्किल से चीख़ पर काबू पाया।

परमेश्वरसिंह बोला—"क्या नींद नहीं आती थी ?"

"हाँ !" अख़्तर बोला—"अम्मा की याद आ गई। अम्मा कहती थी कि नींद न आये तो तीन बार कुल हू अल्लाह पढ़ो, नींद आ जायेगी। अब नींद आ रही थी पर अमरकौर ने डरा दिया।"

"फिर से पढ़ कर सो जाओ।" परमेश्वरसिंह ने कहा—"रोज़ पढ़ा करो। ऊँचे-ऊँचे पढ़ा करो। इसे भूलना नहीं, वर्ना तुम्हारी अम्मा मारेगी, लो अब सो जाओ।" उसने अख़्तर को लिटा कर उसे लिहाफ़ ओढ़ा दिया। फिर दीपक बुझाने के लिए बढ़ा तो अमरकौर पुकारी, "नहीं-नहीं, बाबा बुझाओ नहीं; डर लगता है।"

"डर लगता है ?" परमेश्वरसिंह ने अचंभित होकर पूछा—'किससे डर लगता है ?"

"जलता रहे, क्या है ?" पत्नी बोली।

और परमेश्वरसिंह दिया बुझा कर हँस दिया।

"पगलियाँ।" वह बोला—"गधियाँ।"

रात्रि के अन्धकार में अख़्तर धीरे-धीरे कुल हू अल्लाह पढ़ता रहा। फिर कुछ देर बाद वह ज़रा-ज़रा से ख़र्राटे लेने लगा। परमेश्वरसिंह भी सो गया और उसकी पत्नी भी; किन्तु अमरकौर रात-भर कच्ची नींद

में पड़ोस की मस्जिद की अज़ान सुनती रही और डरती रही।

अब अख़्तर के अच्छे-ख़ासे केश बढ़ आये थे, जूड़े में कंघा भी अटक जाता था। गाँव वालों की तरह परमेश्वरसिंह की पत्नी भी कर्तारा कहने लगी थी; किन्तु अमरकौर अख्तर को इस प्रकार देखती थी जैसे वह कोई बहरूपिया है और अभी पगड़ी और केश उतार कर फेंक देगा और क़ुल हू अल्लाह पढ़ता हुआ अदृश्य हो जायेगा।

एक दिन परमेश्वरसिंह बड़ी तेज़ी से घर आया और हाँफते हुए उसने अपनी स्त्री से पूछा—"वह कहाँ है ?"

"कौन ? अमरकौर ?"

"नहीं।"

"कर्तारा ?"

"नहीं !" फिर कुछ सोचकर बोला—"हाँ हाँ वही कर्तारा ?"

"बाहर खेलने गया है, गली में होगा।"

परमेश्वरसिंह वापस लपका। गली में जाकर भागने लगा। बाहर खेतों में जाकर उसकी गति और तेज़ हो गई। फिर उसे दूर ज्ञानसिंह के गन्ने की फ़सल के पास कुछ बच्चे कबड्डी खेलते दिखाई दिये। खेत की मेंड़ पर से उसने देखा कि अख़्तर ने एक लड़के को घुटने तले दबा रखा है, लड़के के होंठों से रक्त फूट रहा है; मगर कबड्डी-कबड्डी की रट जारी है। फिर उस लड़के ने जैसे हार मान ली और जब अख्तर की जकड़ से छूटा तो बोला—"क्यों कर्तारू ! तुमने मेरे मुँह हर घुटना क्यों मारा ?"

"अच्छा किया जो मारा।" अख्तर अकड़ कर बोला और बिखरे जूड़े की लटें सँभाल कर उनमें कंघा फँसाने लगा।

"तुम्हारे रसूल ने तुम्हें यही समझाया है ?" लड़के ने व्यंग्य से पूछा।

अख़्तर एक क्षण के लिए चकरा गया। फिर कुछ सोच कर बोला—"और क्या तुम्हारे गुरु ने तुम्हें यही समझाया है ?"

"मुसल्ला ।" लडके ने उसे गाली दी।

"सिखडा !" अख्तर ने उसे गाली दी।

सब लडके अख्तर पर टूट पडे। परमेश्वरसिंह की एक ही कडक से मैदान साफ था। उसने अख्तर की पगडी बाँधी और उसे एक तरफ ले जाकर बोला—"सुनो बेटे, मेरे पास रहोगे कि अम्मा के पास जाओगे ?"

अख्तर कोई निर्णय न कर सका। कुछ देर तक परमेश्वरसिंह की आँखो-मे-आँखे डाले खडा रहा। फिर मुसकराने लगा और बोला—"अम्मा पास जाऊँगा।"

"और मेरे पास नही रहोगे ?" परमेश्वरसिंह का रग यो लाल हो गया, जैसे वह रो देगा।

"तुम्हारे पास भी रहूँगा।" अख्तर ने समस्या का हल उपस्थित कर दिया। परमेश्वरसिंह ने उसे उठा कर सीने से लगा लिया। और वह आँसू जो विवशता ने आँखो मे एकत्र किये थे, आनन्द के आँसू बन कर टपक पडे, वह बोला—"देखो बेटे, अख्तर बेटे ! अख्तर बेटे !! आज यहाँ फौज आ रही है। ये फौजी तुम्हे मुझसे छीनने आ रहे है। समझे ? कही छिप जाओ। फिर जब वे चले जायेगे ना तो फिर मैं तुम्हे ले जाऊँगा।"

परमेश्वरसिंह को उस समय नर्क का एक फैलता हुआ बवडर दिखाई दिया। मेड पर चढकर उसने लम्बे होते हुए बवडर को ध्यान से देखा और अचानक तडप कर बोला, "फौजियो की लारी आ गई।" वह मेड पर से कूद पडा। और गन्ने के खेत का पूरा चक्कर काट गया—"ज्ञाने ! ज्ञानसिंह !" वह चिल्लाया। ज्ञानसिंह फसल के अन्दर से निकल कर आया। उसके एक हाथ मे दराँती और दूसरे मे थोडी-सी घास थी। परमेश्वरसिंह उसे अलग ले गया। उसे कोई बात समझाई। फिर दोनो अख्तर की तरफ आये। ज्ञानसिंह ने फसल मे से एक गन्ना तोड़कर दराँती से उसके पत्ते काटे और उसे अख्तर के

हवाले करके बोला—"आओ भाई कर्तारा, तुम मेरे पास बैठ कर गन्ना चूसो; जब तक ये फ़ौजी चले जायें। अच्छा-खासा बना-बनाया खालसा हथियाने आये हैं, हुँ!" परमेश्वरसिंह ने अख्तर से जाने की आज्ञा माँगी—"जाऊँ ?"

और अख्तर ने दाँतों में गन्ने का लम्बा सा छिलका जकड़े हुए मुसकराने की कोशिश की। आज्ञा पाकर परमेश्वरसिंह गाँव की ओर भाग गया। बवंडर गाँव की तरफ़ बढ़ा आ रहा था।

घर जाकर उसने पत्नी और बेटी को समझाया। फिर भागम-भाग ग्रंथीजी के पास गया। उनसे बात करके इधर-उधर दूसरे लोगों को समझाता फिरा। और जब फ़ौजियों की लारी धर्मशाला से इधर खेत में रुक गई तो सब फ़ौजी और पुलिस वाले ग्रन्थी जी के पास आये। उनके साथ इलाके का नम्बरदार भी था। मुसलमान लड़कियों के बारे में पूछ-ताछ होती रही............ग्रन्थीजी ने ग्रन्थ साहब की क़सम खाकर कह दिया कि इस गाँव में कोई मुसलमान लड़की नहीं ? "लड़के की बात दूसरी है।" किसी ने परमेश्वरसिंह के कान में काना-फूसी की और आस-पास के सिख परमेश्वरसिंह समेत बहुत सूक्ष्म मुसकराहट से मुसकराने लगे। फिर एक फ़ौजी अफ़सर ने गाँव वालों के सामने एक भाषण दिया—उसने उस ममता पर बड़ा ज़ोर दिया, जो उन माँओं के दिलों में उन दिनों टीस बन कर रह गई थी, जिन की बेटियाँ छिन गई थीं। और उन भाइयों और पतियों के प्यार की बड़ी करुणाजनक तसवीर खींची जिन की पत्नियाँ उनसे हथिया ली गई थीं। "और धर्म का क्या है दोस्तो !" उसने कहा था—"दुनिया का प्रत्येक धर्म मनुष्य को मनुष्य बनना सिखाता है। और तुम धर्म का नाम लेकर इनसान को इनसान से चुरा लेते हो। उनकी आबरू पर नाचते हो। हम सिख हैं, हम मुसलमान हैं; हम वाह गुरुजी के चेले हैं, हम रसूल के गुलाम हैं।"

भाषण के बाद भीड़ छटने लगी। फ़ौजियों के आफ़िसर ने ग्रन्थी-

जी का शुक्रिया अदा किया और उनसे हाथ मिलाया। लारी चली गई।

सबसे पहले ग्रन्थीजी ने परमेश्वरसिंह को मुबारकबाद दी। फिर दूसरे लोगों ने परमेश्वरसिंह को घेर लिया। और उसे मुबारकबाद देने लगे। परन्तु परमेश्वरसिंह लारी के आने से पहले हक्का बक्का हो रहा था। अब लारी के जाने के बाद लुटा-लुटा-सा लग रहा था। फिर वह गाँव में से निकल कर ज्ञानसिंह के खेत में आया। अख़्तर को कन्धे पर बिठा कर घर में ले आया। भोजन कराने के पश्चात् उसे खाट पर लिटाकर कुछ यों थपका कि उसे नींद आ गई। परमेश्वरसिंह देर तक अख़्तर की खाट पर बैठा रहा। कभी-कभी दाढ़ी खुजाता और इधर-उधर देख कर फिर से सोच में डूब जाता। पड़ोस की छत पर खेलता हुआ एक बच्चा अचानक एड़ी पकड़ कर बैठ गया और ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा। "हाय इतना बड़ा काँटा उतर गया पूरे का पूरा।" वह चिल्लाया और फिर उसकी माँ नंगे सर ऊपर को भागी। उठाकर गोद में बिठा लिया, फिर नीचे बेटी को पुकार कर सुई मँगवाई। काँटा निकालने के बाद फिर उसे खूब चूमा। और फिर नीचे झुक कर पुकारी—"अरे मेरा दुपट्टा तो ऊपर फेंक देना। कैसी बेहयाई से ऊपर भागी चली आई।"

परमेश्वरसिंह ने कुछ देर के बाद चौंक कर अपनी स्त्री से पूछा—"सुनो! क्या तुम्हें कर्तारा अब भी याद आता है?"

"लो और सुनो!" पत्नी बोली और फिर एक दम सूपो रो दी—"कर्तारा तो मेरे कलेजे का नासूर बन गया है परमेश्वरे!"

कर्तारा का नाम सुन कर इधर से अमरकौर उठकर आई। और माँ के घुटनों के पास बैठकर रोने लगी। परमेश्वर यों चमक कर जल्दी से उठा। जैसे उसने शीशे के बर्तनों से भरा हुआ बड़ा थाल अचानक ज़मीन पर दे मारा है।

संध्या के भोजन के बाद वह अख़्तर की उंगली पकड़े बाहर दालान

में आया और बोला—"आज तो दिन-भर खूब सोये हो बेटा ! चलो आज ज़रा घूमने चलते हैं। चाँदनी रात है।

अख़्तर तुरन्त मान गया। परमेश्वरसिंह ने उसे एक कम्बल में लपेटा और कन्धे पर बिठा लिया। खेतों में आकर वह बोला—"यह चाँद जो पूरब से निकल रहा है ना बेटे ! यह जब हमारे सिर पर पहुँचेगा तो सुबह हो जायेगी।"

अख़्तर चन्द्रमा की ओर देखने लगा।

"यह चाँद जो यहाँ चमक रहा है ना यह वहाँ भी चमक रहा होगा। तुम्हारी अम्मा के देश में।"

अब की बार अख़्तर ने झुक कर परमेश्वरसिंह की ओर देखने की कोशिश की।

"यह चाँद हमारे सिर पर आयेगा, तो वहाँ तुम्हारी अम्मा के सिर पर भी होगा।"

अब की बार अख़्तर बोला—"पर तुम ले तो जाते नहीं, तुम बहुत बुरे हो, तुम सिख हो।"

परमेश्वरसिंह बोला—"नहीं बेटे ! आज तो तुम्हें जरूर ही ले जाऊँगा। तुम्हारी अम्माँ की चिट्ठी आई है। वह कहती है अख़्तर बेटे के लिये उदास हूँ।"

"मैं भी तो उदास हूँ। अख़्तर को जैसे कोई भूली हुई बात याद आ गई।

"मैं तुम्हें तुम्हारी अम्मा के ही पास लिये जा रहा हूँ।"

"सच ?" अख़्तर परमेश्वरसिंह के कन्धे पर कूदने लगा और ज़ोर-ज़ोर से बोलने लगा—"हम अम्मा पास जा रहे हैं, परमू हमें अम्माँ पास ले जाएगा। हम वहाँ से परमू को चिट्ठी लिखेंगे।"

परमेश्वरसिंह चुपचाप रोये जा रहा था। आँसू पोंछ कर और गला साफ़ करके उसने अख़्तर से पूछा—"गाना सुनोगे ?"

"हाँ !"

"पहले तुम कुरआन सुनाओ।"

"अच्छा।" और अख्तर कुल हू अल्लाह अहद पढ़ने लगा। अहद पर पहुंच कर उसने अपने सीने पर छू की और परमेश्वरसिंह से बोला—

"लाओ तुम्हारे सीने पर भी छू कर दूँ।"

रुक कर परमेश्वरसिंह ने गले का एक बटन खोला और ऊपर देखा। अख़्तर ने लटक कर उसके सीने पर छू कर दी और बोला—

"अब तुम सुनाओ !"

परमेश्वरसिंह ने अख़्तर को दूसरे कन्धे पर बिठा लिया। उसे बच्चों का गीत याद नहीं था, इसलिये उसने तरह-तरह के गीत गाने आरम्भ किये और गाते हुए तेज़-तेज़ चलने लगा। अख़्तर चुपचाप सुनता रहा।

बनतो दा सरवन वरगा जे
बनतो दा मुन्ना चन वरगा जे
बनतो दा लक चतरा जे
लोको
बनतो दा लक चतरा जे......

"बनतो कौन है ?" अख़्तर ने परमेश्वरसिंह को टोका। परमेश्वर-सिंह हँसा। फिर कुछ अन्तर के बाद बोला—"मेरी स्त्री है ना; अमरकौर की माँ, उसका नाम भी तो बनतो है। तुम्हारी अम्माँ का नाम बनतो ही होगा।"

"क्यों ?" अख़्तर क्रुद्ध हो गया। "वह कोई सिख है ?"

चन्द्रमा बहुत ऊँचा हो गया था। रात मौन थी। कभी-कभी गन्ने के खेतों के आस-पास गीदड़ रोते और फिर सन्नाटा छा जाता। अख़्तर पहले तो गीदड़ों की आवाज़ से डरा, परन्तु परमेश्वरसिंह के समझाने से बहल गया और एक बार की मौनता के लम्बे क्षणों के पश्चात् उसने परमेश्वरसिंह से पूछा—"अब क्यों नहीं रोते गीदड़ ?" परमेश्वरसिंह

हँस दिया, फिर उसे एक कहानी याद आ गई। यह गुरु गोविन्द की कहानी थी। लेकिन उसने बड़े अजब ढंग से सिखों के नामों को मुसलमानों के नामों में बदल दिया। और अख्तर "फिर ?" फिर ?" की रट लगाता रहा। कहानी अभी चल रही थी कि अख्तर एकदम बोला—"अरे चाँद तो सिर पर आ गया।"

परमेश्वरसिंह ने भी रुक कर ऊपर देखा। फिर वह निकट के टीले पर चढ़कर दूर देखने लगा और बोला—"तुम्हारी अम्मा का देश जाने किधर चला गया ?"

वह कुछ देर टीले पर खड़ा रहा। जब अचानक कहीं बहुत दूर से अज़ान की आवाज़ आने लगी और अख्तर मारे खुशी के यों कूदने लगा कि परमेश्वरसिंह उसे बड़ी कठिनाई से सँभाल सका, तो उसे कन्धे पर से उतार कर वह ज़मीन पर बैठ गया और खड़े हुए अख्तर के कन्धों पर हाथ रखकर बोला—"जाओ बेटे, तुम्हें तुम्हारी अम्माँ ने पुकारा है, बस तुम आवाज़ की सीध में…"

'शी ! शी !" अख्तर ने अपने होंठों पर उँगली रख दी। और कानाफूसी में बोला—"अज़ान के वक्त नहीं बोलते !"

'पर मैं तो सिख हूँ बेटे !" परमेश्वरसिंह बोला।

"शी ! शी !" अब की अख्तर ने बिगड़ कर उसे घूरा—और परमेश्वरसिंह ने उसे गोद में बिठा लिया। उसके माथे पर एक बहुत लम्बा प्यार दिया और अज़ान ख़त्म होने के बाद आस्तीनों से आँखों को रगड़ कर भर्राई हुई आवाज़ में बोला—"मैं यहाँ से आगे नहीं जाऊँगा बस तुम…"

"क्यों ? क्यों नहीं जाओगे ?" अख्तर ने पूछा।

"तुम्हारी अम्मा ने चिट्ठी में यही लिखा है कि अख्तर अकेला आये।" परमेश्वरसिंह ने अख्तर को फुसला लिया, "बस तुम सीधे चले जाओ। सामने एक गाँव आयेगा, वहाँ जाकर अपना नाम बताना। कर्तारा नहीं, अख्तर। फिर अपनी अम्माँ का नाम बताना, अपने गाँव

का नाम बताना, और देखो मुझे एक चिट्ठी ज़रूर लिखना।"

"लिखूँगा।" अख्तर ने वचन दिया।

"और वहाँ तुम्हें कर्तारा नाम का कोई लड़का मिले तो उसे इधर भेज देना, अच्छा!"

"अच्छा!"

परमेश्वरसिंह ने एक बार फिर अख्तर का माथा चूमा; और जैसे कुछ निगल कर बोला—"जाओ!"

अख्तर कुछ डग चला, किन्तु लौट आया—"तुम भी आ जाओ ना।"

"नहीं भाई!" परमेश्वरसिंह ने उसे समझाया। "अम्माँ ने चिट्ठी में यह नहीं लिखा था।"

"मुझे डर लगता है।" अख्तर बोला।

"कुरआन क्यों नहीं पढ़ते?" परमेश्वरसिंह ने परामर्श दिया।

"अच्छा!" बात अख्तर की समझ में आ गई और वह कुल हो अल्लाह का उच्चारण करता हुआ जाने लगा।

सुहावनी पौ क्षितिज के मण्डल पर अन्धेरे से लड़ रही थी और नन्हा-सा अख्तर दूर धुँधली पगडंडी पर एक लम्बे-तंड़गे सिख जवान की तरह तेज़-तेज़ जा रहा था। परमेश्वरसिंह उस पर नज़रें गाड़े टीले पर बैठा रहा और जब अख्तर अदृश्य हो गया तो वह वहाँ से उतर आया।

अख्तर अभी गाँव के निकट नहीं पहुँचा था कि दो सिपाही लपक कर आये और उसे रोक कर बोले—"कौन हो तुम?"

"अख्तर!" वह इस प्रकार बोला जैसे सारी दुनिया उसका नाम जानती है।

"अख्तर!" दोनों सिपाही कभी अख्तर के चेहरे को देखते थे और कभी उसकी सिखों की-सी पगड़ी को। फिर एक ने आगे बढ़कर उस की पगड़ी झटके से उतार ली तो अख्तर के केश खुल कर इधर-उधर बिखर गये।

अख्तर ने भन्ना कर पगडी छीन ली और फिर सिर को एक हाथ से टटोलते हुए वह ज़मीन पर लेट गया, फिर जोर-ज़ोर से रोते हुए बोला—"मेरा कंघा लाओ। तुमने मेरा कघा ले लिया है। दे दो, वर्ना मैं तुम्हे मार दूंगा।"

एक दम दोनो सिपाही जमीन पर धब-से गिरे और रायफलो को कंधो से लगा कर जैसे निशाना बाँधने लगे—"हाल्ट!" एक पुकारा और जैसे उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा। फिर बढते हुए उजाले मे उन्होंने एक-दूसरे की तरफ देखा और एक फायर कर दिया। अख्तर फायर की आवाज़ से दहल कर रह गया और सिपाहियो को एक तरफ भागता देख कर वह भी रोता-चिल्लाता हुआ उनके पीछे भागा।

सिपाही जब एक जगह जाकर रुके तो परमेश्वरसिंह अपनी रान पर कस कर पगडी बाँध चुका था। मगर रक्त उसकी पगडी की सैंकड़ो परतो मे से भी फूट आया था और वह कह रहा था—"मुझे क्यो मारा तुमने? मै तो अख्तर के केश काटना भूल गया था। मैं तो अख्तर को उसका धर्म वापस देने को आया था, यारो..."

दूर अख्तर भागा आ रहा था और उसके केश हवा मे उड रहे थे।

———

चौथी का जोड़ा

असमत चुग़ताई

सहदरी की चौकी पर आज फिर स्वच्छ-सुथरी जाजिम बिछी थी। टूटे-फूटे खपरैल के छिद्रों में से धूप के आड़े-तिर्छे टुकड़े पूरे दालान में बिखरे हुए थे। मुहल्ले-टोले की स्त्रियाँ चुपचाप सहमीसहमी-सी बैठी हुई थीं जैसे कोई दुर्घटना होने वाली हो। माताओं ने बच्चे छातियों से लगा लिये थे। कभी-कभी कोई चिड़चिड़ा बच्चा खाद्य-पदार्थ की कमी की दुहाई देकर चिल्ला उठता। "नाईं, नाईं!" दुबली-पुतली माँ उसे अपने घुटने पर इस तरह बहलाती जैसे धान-चावल सूप में फटक रही हो, और बच्चा हुँकारे भर कर चुप हो जाता।

आज कितनी आस-भरी निगाहें कबरी की माँ के चिन्तित मुँह को तक रही थी। छोटी माप की टूल के दो पाट तो जोड़ लिये गये थे मगर अभी सफ़ेद गज़ी का निशान ब्योंतने की किसी को हिम्मत नहीं पड़ती थी। काट-छाँट के विषय में कबरी की माँ की पदवी बहुत ही ऊँची थी। उनके सूखे-सूखे हाथों ने न जाने कितने दहेज सँवारे थे, कितने छठी-छूछक तैयार किये थे; और कितने ही क़फ़न ब्यौंते थे। जहाँ कहीं मुहल्ले में कपड़ा कम पड़ जाता और लाख जतन पर भी ब्यौंत नहीं बैठती, तो कबरी की माँ के पास केस लाया जाता। कबरी की माँ कपड़े की कान निकालतीं, क़लफ तोड़तीं, कभी त्रिकोण बनातीं, कभी चौकोर करतीं और दिल-ही-दिल में कैंची चलाकर आँखों से नाप-तोलकर मुसकरा पड़तीं।

"आस्तीन और घेर तो निकल आयेगा। और गले के लिये कुतर

बकुची-सी ले लो।" और कठिनाई सरल हो जाती। कपड़ा काटकर वह कतरनों की पिंडी बनाकर पकड़ा देतीं।

पर आज तो सफ़ेद गज़ी का टुकड़ा बहुत ही छोटा था; और सब को विश्वास था कि आज तो कबरी की माँ की नाप-तौल हार जायेगी। जब ही तो सब दम साधे उसका मुँह ताक रही थीं। कबरी की माँ के दृढ़ता-भरे चेहरे पर चिन्ता का कोई चिन्ह न था। चार गिरह गज़ी के टुकड़े को वह निगाहों से ब्यौंत रही थीं। लाल टूल का प्रतिबिम्ब उनके नीले और पीले मिश्रित चेहरे पर प्रभात की लालिमा की तरह फूट रहा था। वह उदास-उदास गहरी झुर्रियां श्याम घटाओं की तरह एक दम उजागर हो गईं जैसे घने जंगल में आग भड़क उठी हो। और उन्होंने मुसकराकर कैंची उठा ली।

मुहल्लेवालियों के जमघटे से एक लम्बी संतोष की साँस उभरी। गोद के बच्चे भी ठसक दिये गये। चील जैसी निगाहों वाली कुँवारियों ने लप-झप सुई के नाकों में डोरे पिरोये। नई ब्याही दुलहिनों ने अँगुस्ताने पहन लिये। कबरी की माँ की कैंची चल पड़ी थी।

सहदरी के अन्तिम कोने में पलंगड़ी पर हमीदा पैर लटकाये हथेली पर ठोड़ी रखे दूर कुछ सोच रही थी।

दोपहर का भोजन समाप्त कर उसी तरह ही अम्मा सहदरी की चौकी पर जा बैठती हैं और बकुची खोल कर रंग-बिरंगे कपड़ों का जाल बिखेर दिया करती हैं। कूंड़ी के पास बर्तन माँजती हुई कबरी ललचाई आँखों से उन लाल कपड़ों को देखती तो एक सुर्ख छिपकली सी उसके पीले मिले हुए मटियाले रंग में लपक उठती। रजतमयी-कटोरियों के जाल जब पीले-पीले हाथों से खोलकर अपने घुटनों पर फैलातीं तो उनका मुर्झाया हुआ चेहरा एक विचित्र लालसा-भरे प्रकाश से जगमगा उठता। गहरी सन्दूकों-जैसी शिकनों पर कटोरियों का प्रतिबिम्ब नन्ही-नन्ही मशालों की तरह जगमगाने लगता। हर टाँके पर ज़री का काम हिलता और मशालें कम्पित हो उठतीं।

याद नहीं कब उसके झीने दुपट्टे बने-टँके तैयार हुए और गाड़ी के भारी क़ब्र जैसे सन्दूक की तह में डूब गये। कटोरियों के जल धुंधला गये। गंगा-जमुनी किरणें मन्द पड़ गईं। तूली के लच्छे उदास हो गये, मगर कबरी की बरात न आई, जब एक जोड़ा पुराना हो जाता तो उसे चाले का जोड़ा कह कर सैंत दिया जाता। और फिर एक नये जोड़े के साथ नई आशाओं का प्रारम्भ हो जाता। बड़ी छान-बीन के पश्चात् नई जोड़ी छाँटी जाती। सहदरी की चौकी पर स्वच्छ-सुथरी जाजिम बिछती, और मुहल्ले की स्त्रियाँ हाथ में पानदान और बग़लों में बच्चे दबाये झाँझें बजातीं आन पहुँचतीं।

"छोटे कपड़ों की गोट तो उतर आयेगी। पर बच्चियों का कपड़ा न निकलेगा।"

"लो बाबा लो सुनो, तो क्या निगोड़ी मारी टूल की चूलें पड़ेंगी ?" और फिर सब के मुँह उदास हो जाते। कबरी की माँ चुप कीमियागर की तरह आँखों के फीते से लम्बाई-चौड़ाई नापतीं और बीवियाँ छोटे कपड़े के सम्बन्ध में खुसुर-फुसुर करके ज़ोर से हँस पड़तीं। ऐसे में कोई मनचली कोई सुहाग या बन्ना छोड़ देती और कोई चार हाथ आगे वाली समधिनों को गालियाँ सुनाने लगती। अश्लील गन्दे मज़ाक और चुहलें शुरू हो जातीं। ऐसे मौक़ों पर कुँवारी-बालियों को सहदरी से दूर सिर ढाँक कर खपरैल में बैठने का हुक्म दे दिया जाता। और जब कोई नया अट्टहास सहदरी से उभरता तो बेचारियाँ एक ठण्डी साँस भर कर रह जातीं। अल्लाह, ये ठहाके इन्हें कब खुद नसीब होंगे ?

इस चहल-पहल से दूर कबरी शर्म की मारी मच्छरों वाली कोठरी में सिर झुकाये बैठी रहती। इतने में कुतर-ब्यौंत अत्यन्त सूक्ष्म ठिकाने पर पहुँच जाती। कोई कली उल्टी कट जाती और उसके साथ बेकें की मुरत भी कट जाती। कबरी सहमकर दरवाज़े की आड़ से झाँकती।

यही तो मुश्किल थी। कोई जोड़ा अल्लाह मारा चैन से न सिलने पाया। जो कली उल्टी कट जाये तो जान लो नाइन की लगाई हुई

बात में ज़रूर कोई अड़ंगा लगेगा। या तो दूल्हा की कोई नई बात निकल आयेगी या उसकी माँ ठोस कड़ों की अड़ंगा बाँधेगी जो गोट में कान आ जाये तो समझ लो या तो मेहर पर बात टूटेगी या भरत के पायों के पलंग पर झगड़ा होगा। चौथी के जोड़े का सगुन बड़ा नाज़ुक होता है। बी अम्मा की सारी चतुराई और सुघड़ाई धरी रह जाती। न जाने ठीक वक्त पर क्या हो जाता कि धनिया-बराबर बात तूल पकड़ जाती। बिस्मिल्ला के ज़ोर से सुघड़ माँ ने दहेज जोड़ना शुरू कर दिया था। ज़रा सी कतर भी बचती तो तेलदानी या शीशी का ग़िलाफ़ सीं कर धनुष गोखरू से सँभाल कर रख देती। लड़की का क्या है, खीरे ककड़ी की तरह बढ़ती है। जो बरात आ गई तो यही सभ्यता काम आयेगी।

और जब से अब्बा गुज़रे चाल-चलन का भी दम फूल गया। हमीदा को एकदम अपने अब्बा याद आ गये। अब्बा कितने दुबले-पतले, लम्बे जैसे मुहर्रम का अलम, एक बार झुक जाते तो सीधे खड़ा होना कठिन था; सुबह-ही-सुबह उठ कर नीम की दातौन तोड़ लेते और हमीदा को घुटने पर बिठा कर न जाने क्या सोचा करते। फिर सोचते-सोचते नीम की दातौन का कोई रेशा गले में चला जाता और वह खाँसते ही चले जाते। हमीदा बिगड़ कर उनकी गोद से उतर आती। खाँसी के धक्कों से यों हिल-हिल जाना उसे कदापि न भाता था। उसके नन्हें-से गुस्से पर वह और हँसते। खाँसी छाती में बेतरह उलझती, जैसे गर्दन-कटे कबूतर फड़-फड़ा रहे हों। फिर भी अम्माँ आकर उन्हें सहारा देतीं और पीठ पर थप्-थप् हाथ मारतीं।

"तोबा है ऐसी भी क्या हँसी ?"

उच्छ्रू के दबाव से लाल आँखें ऊपर उठाकर अब्बा विवशता से मुसमराते। खाँसी तो रुक जाती मगर देर तक बैठे हाँपा करते।

"कुछ दवा-दारू क्यों नहीं करते ? कितनी बार कहा तुमसे ?"

"बड़े चिकित्सालय का डाक्टर कहता है—सुइयाँ लगवाओ और

प्रतिदिन तीन पाव दूध और आधी छटाँक मक्खन।"

"अय ख़ाक पड़े इन डाक्टरों की सूरत पर, भला एक तो खाँसी है ऊपर से चिकनाई। कफ़ न पैदा कर देगी? किसी हकीम को दिखाओ।"

"दिखाऊँगा।" अब्बा हुक्का गुड़-गुड़ाते और फिर उच्छू लगता।

"आग लगे इस मुए हुक्के को। इसी ने तो यह खाँसी लगाई है। जवान बेटी की तरफ़ भी देखते हो आँख उठाकर?"

और अब अब्बा कबरी की जवानी की तरफ़ करुणा-भरी निगाहों से देखते। कबरी जवान थी; कौन कहता था जवान थी। वह तो जैसे बिस्मिल्लहा के दिन से ही अपनी जवानी के आगमन का संदेश सुनकर ठिठक गई थी; न जाने कैसी जवानी आई थी कि न तो उसकी आँखों में किरणें नाचीं न उसके गालों पर बालों की लटें परेशान हुईं न उसके हृदय में तूफ़ान उठे और न कभी उसने सावन-भादों की घटाओं से मचल-मचल कर प्रीतम या साजन माँगे। वह झुकी-झुकी, सहमी-सहमी जवानी तो न जाने कब दबे-पाँव आकर उस पर रेंग आई, वैसे ही चुपचाप न जाने किधर चल दी, मीठा बरस, नमकीन हवा और फिर कड़वा हो गया।

अब्बा एक दिन चौखट पर औंधे मुँह गिरे और उन्हें उठाने के लिए किसी हकीम या डाक्टर का नुस्खा न आ सका और हमीदा ने मीठी रोटी के लिए हठ करना छोड़ दिया।

और कबरी के संदेश न जाने किधर रास्ता भूल गये। जाने किसी को मालूम ही नहीं कि इस टाट के पर्दे के पीछे किसी की जवानी अन्तिम सिसकियाँ ले रही है और एक नई जवानी साँप की फन की तरह उठ रही है।

मगर बी अम्मा की रीति न टूटी। वह उसी तरह नित्य दोपहर को सहदरी में रंग-बिरंगे कपड़े फैला कर गुड़ियों का खेल खेला करती हैं।

कहीं-न-कहीं से जोड़ जमा करके शबरात के महीने में क्रेब का दुपट्टा साढ़े सात रुपये का खरीद ही डाला। बात ही ऐसी थी कि बिना खरीदे गुज़ारा न था। मँझले मामा का तार आया कि उनका बड़ा लड़का राहत पुलिस के ट्रेनिंग के सिलसिले में आ रहा है। बी अम्मा को तो बस जैसे एक दम घबराहट का दौरा पड़ गया, मानो चौखट पर बारात आन खड़ी हुई और उन्होंने अभी दुलहिन की माँग की आफ़शाँ भी नहीं कतरी। हौले-से उनके छक्के छूट गये। झट अपनी मुँह-बोली बहन बुन्दू की माँ को बुला भेजा—

"बहन मेरा मरी का मुँह देखो जो इसी घड़ी न आओ।" और फिर दोनों में खुसुर-फुसुर हुई। बीच में एक नज़र दोनों कबरी पर भी डाल लेतीं जो दालान में बैठी चावल फटक रही थी। वह इस काना-फूसी की ज़बान को अच्छी तरह समझती थी।

उसी समय बी अम्मा ने कानों की चार माशा की लौंगे उतार कर मुँह बोली बहन के हवाले कीं कि जैसे-तैसे करके शाम तक तोला-भर गुखुरू व छः माशा सल्मासितारा और पाव-गज़ नेफे के लिए टूल ला दे। बाहर की तरफ़ वाला कमरा झाड़-पोंछ कर तैयार किया। थोड़ा-सा चूना मँगाकर कबरी ने अपने हाथों से कमरा पोत डाला। कमरा तो चिट्टा हो गया मगर उसकी हथेलियों की खाल उड़ गई। और जब वह शाम को मसाला पीसने बैठी तो चक्कर खाकर दोहरी हो गई। सारी रात करवटें बदलते गुजरी; एक तो हथेलियों की वजह से, दूसरे सुबह की गाड़ी से राहत आ रहे थे।

अल्लाह! मेरे अल्लाह मियाँ! अबकी तो मेरी आपा का भाग्य खुल जाये, मेरे अल्लाह! मैं सौ रकअत नफ़ल तेरी दरगाह में पढ़ूँगी हमीदा ने सुबह की नमाज़ पढ़कर दुआ माँगी।

सुबह जब राहत भाई आये तो कबरी पहले ही से मच्छरों वाली कोठरी में जा छिपी थी। जब सोय्यों और पराठों का नाश्ता करके बैठक में चले गये तो धीरे-धीरे नई दुलहिन की तरह पैर रखती कबरी

कोठरी से निकली और जूठे बर्तन उठा लिए।

"लाओ मैं धो दूँ बी आपा।" हमीदा ने पाजीपन से कहा।

"नहीं।" वह शर्म से झुक गई।

हमीदा छेड़ती रही। बी अम्मा मुसकराती रहीं और क्रेब के दुपट्टे में लप्पा टाँकती रहीं।

जिस रास्ते कान की लौंगें गई थीं, उसी रास्ते फूल, पत्ता और चाँदी की पायज़ेब भी चल दीं; और फिर हाथों की दो-दो चूड़ियाँ भी; जो मँझले मामू ने रँडापा उतारने पर दी थीं। रूखी-सूखी स्वयं खाकर आये दिन राहत के लिए पराँठे तले जाते, कोफ़्ते, भुना पुलाव महकते। खुद सूखा कौर पानी से उतार कर वह होने वाले दामाद को गोश्त के लच्छे खिलातीं।

"समय बहुत ख़राब है बेटी।" वह हमीदा को मुँह फुलाते देखकर कहा करतीं और वह सोचा करती—हम भूखे रह कर दामाद को खिला रहे हैं। बी आपा सुबह-सवेरे उठ कर जादू की मशीन की तरह जुट जाती हैं, निहार मुँह पानी का घूँट पी कर राहत के लिए पराँठे तलती हैं, दूध औटाती हैं, ताकि मोटी-सी मलाई पड़े। उसका बस नहीं था कि वह अपनी चर्बी निकाल कर उन पराँठों में भर दे, और क्यों न भरे अन्त में वह एक दिन उसका अपना हो जाएगा। जो कुछ कमायेगा उसकी हथेली पर रख देगा। फल देने वाले पौधे को कौन नहीं सींचता? फिर जब एक दिन फूल खिलेंगे और फलों से लदी हुई डाली चमकेगी तो यह ताना देने वालियों पर कैसा जूता पड़ेगा। और इस ख़याल ही से मेरी बी आपा के चेहरे पर सुहाग खिल उठता, कानों में शहनाइयाँ बजने लगती, और वह राहत भाई के कमरे को पलकों से झाड़तीं। इनके कपड़ों को प्यार से तह करतीं जैसे वह कुछ उनसे कहते हों। वह उनके बदबूदार चूहों-जैसे सड़े हुए मोज़े, धोती, बिसैंधा, बनियान और नाक से चीकटे रूमाल साफ़ करतीं, उनके तेल में चिपचिपाते हुए तकिये के गिलाफ पर सुइटड्रीम काढ़तीं, पर व्यापार चारों कोने चौकस नहीं

बैठ रहा था। राहत सुबह अण्डे और पराँठे डट कर खाता और शाम को आकर कोफ़्ते खाकर सो जाता और बी अम्मा की मुँह बोली बहन हकीमाना अन्दाज में खुसर-फुसर करतीं।

"बड़ा लज्जाशील है बेचारा।" बी अम्मा तावेलें उपस्थित करतीं—हाँ, यह तो ठीक है, पर भई कुछ तो पता चले रंग-ढंग से, कुछ आँखों से।"

"ऐ नोज, खुदा न करे मेरी लौंडिया आँखें लड़ाये, उसका आँचल भी नहीं देखा है किसी ने।" बी अम्मा अभिमान से कहती।

"ऐ तो पर्दा तुड़वाने कौन कहे है।" बी आपा के उलझे बालों को देख कर उन्हें बी अम्मा की अग्र-सोची की प्रशंसा करनी पड़ती।

"ऐ बहन, तुम तो सच में बड़ी भोली हो, यह मैं कब कहूँ हूँ, यह छोटी निगोड़ी कौन सी बकरीद को काम आयेगी? वह मेरी तरफ़ देख कर हँसती।

"अरी ओ नकचढ़ी! बहनोई से कोई बातचीत, कोई हँसी-दिल्लगी उँह, अरी चल दीवानी।"

"ऐ तो मैं क्या करूँ खाला?"

"राहत मियाँ से बातचीत क्यों नहीं करती?"

"भई हमें तो शरम आती है।"

"ऐ है वह तुझे फाड़ ही तो खाएगा।" बी अम्मा चिढ़ कर बोलतीं।

"नहीं तो, मगर ···मैं निरुत्तर रह गई और फिर विचार-विमर्श हुआ। बड़े सोच-विचार के बाद खुल कर कबाब बनाए गये। आज बी आपा भी कई बार मुसकरा पड़ीं और चुपके-से बोलीं—

"देखो हँसना नहीं, नहीं तो सारा खेल बिगड़ जाएगा।"

"नहीं हँसूँगी।" मैंने वचन दिये।

"खाना खा लीजिए।" मैंने चौकी पर खाने की सामग्री रखते हुए कहा, फिर चौकी के नीचे रखे हुए लोटे से हाथ धोते समय मेरी ओर

सिर से पाँव तक देखा तो मैं भागी वहाँ से ।

मेरा दिल धक्-धक् करने लगा अल्लाह तोबा क्या शैतान आँखें हैं ।

"जा निगोड़ी मारी, अरी देख तो सही वह कैसा मुँह बनाता है, ऐ है सारा मज़ा किर-किरा हो जायेगा ।"

आपा ने एक बार मेरी तरफ़ देखा । उनकी आँखों में विनय थी, लौटी हुई बारातों का मन में दबाया हुआ क्रोध था । वे चौथी के पुराने जोड़ों की थकी हुई उदासी में सिर जुटाये फिर खम्भे से लग कर खड़ी हो गई ।

राहत चुपचाप खाते रहे, मेरी तरफ़ न देखा । खली के कबाब खाते देख कर मुझे चाहिए था कि मज़ाक उड़ा दूँ । ज़ोर-ज़ोर से हँसूं कि—

वाह जी वाह ! दूल्हा भाई, खली के कबाब खा रहे हो ।" मगर मानो किसी ने मेरा कंठ दबोच लिया हो ।

बी अम्मा ने जल कर मुझे वापस बुला लिया और मुँह-ही-मुँह में मुझे कोसने लगीं । अब मैं उनसे क्या कहती कि वह तो मज़े से खा रहा है कमबख्त !

"राहत भाई को कोफ़्ते पसन्द आये ?" बी अम्मा के सिखाने पर मैंने पूछा ।

निरुत्तर !

"बताइये ना ?"

"अरी ठीक से जाकर पूछ ।" बी अम्मा ने बढ़ावा दिया ।

' आपने लाकर दिये, हमने खाये, मज़ेदार ही होंगे ।"

"अरे वाह रे जंगली ।" बी अम्मा से न रहा गया । "तुम्हें पता भी न चला ! मजे से खली के कबाब खा गये ।"

"खली के ? अरे तो रोज़ काहे के होते हैं ? मैं तो अभ्यस्त हो चला हूँ खली और भूसा खाने का ।"

बी अम्मा का मुँह उतर गया । बी आपा की झुकी हुई पलकें ऊपर

से न उठ सकीं। दूसरे रोज़ बी आपा ने प्रतिदिन से दुगुनी सिलाई की और फिर जब शाम को मैं भोजन लेकर गई तो वे बोले—

"कहिए आज क्या लाई हैं, आज तो लकड़ी के बुरादे की बारी है।"

"क्या हमारे यहाँ का भोजन आपको पसन्द नहीं आता ?" मैंने जल कर कहा।

"यह बात नहीं, कुछ अजब-सा मालूम होता है; कभी खली के कबाब तो कभी भूसे की तरकारी।"

मेरे तन-बदन में आग लग गई। हम सूखी खाकर इसे हाथी की खुराक दें; घी टपकते पराँठे ठुसायें, मेरी बी आपा को जोशाँदा नसीब नहीं, और इसे दूध-मलाई निगलवायें। मैं भन्ना कर चली आई।

बी अम्मा की मुँह बोली बहन का नुस्खा काम आ गया और राहत ने दिन का अधिक भाग घर ही में व्यतीत करना आरम्भ कर दिया। बी आपा तो चूल्हे में झुकी रहतीं; बी अम्मा चौथी के जोड़े सिया करतीं और राहत की गन्दी आँखें तीर बन कर मेरे दिल में चुभा करतीं। बात से बात छेड़ना, भोजन खिलाते समय कभी पानी तो कभी नमक के बहाने से और साथ-साथ वाक्यों से खिसिया कर बी आपा के पास जा बैठती। जी चाहता किसी दिन स्पष्ट कह दूँ कि किसी की बकरी और कौन डाले दाना-घास; ए बी मुझ से तुम्हारा यह बैल न नाथा जायेगा; मगर बी आपा के उलझे हुए बालों, चूल्हे की उड़ती हुई राख ……नहीं मेरा कलेजा धक्-से रह गया। मैंने उनके सफ़ेद बाल लट के नीचे छिपा दिये; नांस जाये इस कमबख्त नज़ला का बिचारी के बाल पकने शुरू हो गये।

राहत ने फिर किसी बहाने से मुझे पुकारा। "उँह !" मैं जल गई; पर बी आपा ने कटी हुई मुर्गी की तरह जो पलट कर देखा तो मुझे जाना ही पड़ा। आप हमसे नाराज़ हो गईं ?" राहत ने पानी का कटोरा लेकर मेरी कलाई पकड़ ली…मेरा दम निकल गया और भागी

हाथ झटक कर।

"क्या कह रहे थे ?" बी आपा ने लज्जा और संकोच से मिश्रित आवाज़ में कहा—मैं सचमुच उनका मुँह तकने लगी।

"कह रहे थे; किसने पकाया है भोजन? वाह ! वाह !! जी चाहता है खाता ही चला जाऊँ; पकाने वाली के हाथ खा जाउँ... ....और नहीं ...खा नहीं लूँ; बल्कि चूम लूँ। मैंने जल्दी-जल्दी कहना शुरू किया; और बी आपा का खुरदरा, हल्दी-धनिया घी बिसाँध में मुड़ा हुआ हाथ अपने हाथ से लगा लिया। मेरे आँसू निकल आये। "ये हाथ" मैंने सोचा जो सुबह से शाम तक मसाला पीसते हैं, पानी भरते हैं, जूते साफ़ करते हैं, ये विवश गुलाम सुबह से सन्ध्या तक जुटे ही रहते हैं। इनकी बेगार कब ख़त्म होगी ? क्या इनका कोई ख़रीदार न आयेगा ? क्या इन्हें कभी कोई प्यार से न चूमेगा ? क्या इनमें कभी मेहँदी न रचेगी ? जी जाहा—ज़ोर से चीख पड़ूँ।

"और क्या कह रहे थे ?" बी आपा के हाथ तो इतने खुरदरे थे पर स्वर इतना रसीला और मधुर था कि अगर राहत के कान होते तो......मगर राहत के न कान थे न नाक; बस नर्क जैसा पेट था।

"और कह रहे थे अपनी बी आपा से कहना कि इतना काम किया न करें और काढ़ा पिया करें।"

"चल झूठी !"

"अरे वाह ! झूठे होंगे आपके वह... .... "

"अरी चुप मुर्दार !" उन्होंने मुँह बन्द कर दिया।

"देख स्वीटर बुन गया है, उन्हें दे आ, पर देख तुझे मेरी कसम मेरा नाम न लीजो।"

"नहीं बी आपा, उन्हें न दो वह स्वीटर, तुम्हारी इन मुट्ठी-भर हड्डियों को स्वीटर की कितनी आवश्यकता है ?" मैंने कहना चाहा पर न कह सकी।

"आपा बी ! तुम स्वयं क्या पहनोगी ?

"अरे मुझे क्या ज़रूरत है, चूल्हे के पास तो वैसे ही झुलसती रहती हूँ।"

स्वीटर देख कर राहत ने अपनी एक भौं पाजीपन से ऊपर तान कर कहा—

"क्या यह स्वीटर आपने बुना है ?"

"नहीं तो।"

"तो भाई हम नहीं पहनेंगे।"

मेरा जी चाहा कि उसका मुँह नोंच लूँ ! कमीने, मिट्टी के थोंदे, यह स्वीटर उन हाथों ने बुना है, जो जीने-जागते गुलाम हैं। इसके एक-एक फन्दे में किसी भाग्य-जली की इच्छाओं की गरदनें फँसी हुई हैं। यह उन हाथों का बुना हुआ है जो नन्हीं पैंगें झुलाने के लिए बनाये गये हैं। इनको थाम लो गधे कहीं के, और ये दो पतवार बड़े-से-बड़े तूफ़ान के थपेड़ों से तुम्हारी जिन्दगी की नाव को बचा कर पार लगा देंगे। ये सितार की गत न बजा सकेंगे, इन्हें प्यानो पर नृत्य करना नहीं सिखाया गया, इन्हें फूलों से खेलना नहीं नसीब हुआ, मगर ये हाथ तुम्हारे शरीर पर चर्बी चढ़ाने के लिये प्रभात से सन्ध्या तक सिलाई करते हैं, साबुन और सोड़े में डुबकियाँ लगाते हैं, चूल्हे की आँच सहते हैं, तुम्हारी गन्दगियाँ धोते हैं, ताकि तुम उजले चिट्टे बगुला-भक्ति का ढोंग रचाये रहो। मेहनत ने इनमें घाव डाल दिये हैं, इनमें कभी चूड़ियाँ नहीं खनकती हैं, इन्हें कभी किसी ने प्यार से नहीं थामा है।

मगर मैं चुप रही। बी अम्मा कहती हैं, मेरा दिमाग़ तो मेरी नई-नई सहेलियों ने ख़राब कर दिया है। वह मुझे कैसी नई-नई बातें बताया करती हैं, कैसी डरावनी मौत की बातें, भूख और काल की बातें, धड़कते हुए दिल के एक दम चुप हो जाने वाली बातें।

"यह स्वीटर तो आप ही पहन लीजिये, देखिये ना आपका कुर्ता कितना महीन है ?"

जंगली बिल्ली की तरह मैंने उसका मुँह, नाक, गला और बाल

नोच डाले और अपनी पलंगड़ी पर जा गिरी। बी आपा ने अन्तिम रोटी डाल कर जल्दी-जल्दी तसले में हाथ धोये और आंचल से पोंछती मेरे पास आ बैठी।

"वह बोले ?" उनसे न रहा गया तो धड़कते हुए दिल से पूछा।

"बी आपा ! यह राहत भाई बड़े खराब आदमी हैं।" मैंने सोचा मैं आज सब कुछ बता दूँगी।

"क्यों ?" वह मुसकराईं।

"मुझे अच्छे नहीं लगते······देखिये मेरी सारी चूड़ियाँ चूरा हो गई।" मैंने काँपते हुए कहा।

"बड़े दुष्ट हैं।" उन्होंने प्यार-भरे स्वर में लजा के कहा।

"बी आपा ·····सुनो बी आपा—यह राहत अच्छे आदमी नहीं।" मैंने सुलग कर कहा—"आज बी अम्मा से कह दूँगी।"

"क्या हुआ ?" बी अम्मा ने जाजिम बिछाते हुए कहा।"

"देखो मेरी चूड़ियाँ बी अम्मा।"

"राहत ने तोड़ डालीं ?" बी अम्मा प्रसन्नता से चहक कर बोलीं।

"हाँ !"

"खूब किया। तू उसे सताती भी तो बहुत है। अय है तो दम काहे को निकल गया। बड़ी मोम की बनी हुई हो कि हाथ लगाया और पिघल गईं।" फिर चुमकार कर बोली—"खैर तू भी चौथी में बदला ले लीजो। वह कसर निकालियो कि याद ही करें मियाँजी।" यह कह-कर उन्होंने लक्ष्य निश्चित कर लिया। मुँह बोली बहन से फिर कान्फ्रेंस हुई। फिर विषय को आशा के बाढ़ पर पग बढ़ाते देख कर अत्यन्त प्रसन्नता से आनन्द मनाया गया।

"अय, है तो तू बड़ी ठस, अय हम तो अपने बहनोइयों का खुदा की कसम नाक में दम कर दिया करते थे।"

और वह मुझे बहनोइयों से छेड़-छाड़ के हथकण्डे बताने लगीं कि किस तरह उन्होंने केवल छेड़-छाड़ के राम-बाण नुस्खे से उन ममेरी

बहनों की शादी कराई जिनकी नाव पार लगने के सारे अवसर हाथ से निकल चुके थे। जहाँ बेचारे को लड़कियाँ-बालियाँ छेड़तीं शर्माने लगते और शर्माते-शर्माते उमंगों के दौरे पड़ने लगते और एक दिन मामू साहब से कह दिया कि मुझे गुलामी में ले लीजिए।

दूसरे, वायसराय के दफ़्तर में क्लर्क थे जहाँ सुना कि बाहर आये हैं, लड़कियाँ छेड़ना शुरू कर देती थीं। कभी गिलौरियों में मिर्चें भर कर भेज दीं, और कभी सेंवइयों में नमक डाल कर खिला दिया।

यह लो वह तो रोज़ आने लगे। आँधी आये, पानी आये, क्या मजाल जो वह न आए? आख़िर एक दिन कहलवा ही दिया अपने एक जान-पहचान वाले से कि उनके यहाँ शादी करा दो। पूछा कि "भई किससे?" तो कहा—"किसी से भी करा दो।" और खुदा झूठ न बुलवाये तो बड़ी बहन की सूरत थी कि देखो तो जैसे बेचा चला आता है। छोटी तो बस सुब्हान अल्लाह, एक आँख पूरब तो दूसरी पश्चिम। पन्द्रह तोले सोना दिया है बाप ने और बड़े साहब के दफ़्तर में नौकरी अलग दिलवाई।"

यह बात नहीं है बहन, आजकल के लड़कों का दिल बस थाली का बैंगन होता है, जिधर झुका दो उधर ही लुढ़क जाएगा। मगर राहत तो बैंगन नहीं, अच्छा-ख़ासा पहाड़ है, झुकाव होने पर कहीं मैं ही न पिस जाऊँ, मैंने सोचा। फिर मैंने आपा की तरफ़ देखा, वह चुपचाप दहलीज़ पर बैठी आटा गूँध रही थीं और सब कुछ सुनती जा रही थीं। उनका बस चलता तो ज़मीन की छाती फाड़कर अपने कुँवारेपन की धिक्कार-समेत उसमें समा जातीं।

"क्या मेरी आपा पुरुष की भूखी हैं? नहीं वह भूख के अनुभव से पहले ही सहम चुकी है, पुरुष की कल्पना उनकी बुद्धि में एक उमंग बन कर नहीं उभरी, प्रत्युत् रोटी-कपड़े का प्रश्न बन कर उभरी है। वह एक विधवा की छाती का बोझ है, इस बोझ को ढकेलना ही होगा।"

मगर इशारों के बावजूद भी राहत मियाँ न तो खुद मुँह से फूटे

श्रौर न उनके घर ही से संदेश आया। थक-हार कर बी अम्मा ने पैरों के तोड़े गिरवी रख कर पीर मुश्किलकुशा की नियाज़ दिला डाली। दोपहर-भर मुहल्ला टोले की लड़कियाँ आँगन में ऊधम मचाती रहीं। बी आपा शर्माई लजाई मच्छरों वाली कोठरी में अपने खून की अन्तिम बूँदें चुसाने को जा बैठी। बी अम्मा कमज़ोरी में अपनी चौकी पर बैठी चौथी के जोड़े में अन्तिम टाँके लगाती रहीं। आज उनके चेहरे पर मंज़िलों के निशान थे। आज मुश्किलकुशाई होगी। बस आँखों की सुइयाँ रह गई हैं, वे भी निकल जायेंगी। आज उनकी झुरियों में फिर मशालें थर-थरा रही थीं। बी आपा की सहेलियाँ उनको छेड़ रही थीं और वह खून की बची-खुची बूँदों को ताव में ला रही थीं। आज कई दिनों से उनका बुखार नहीं उतरा था। थके-हारे दिये की तरह इनका चेहरा एक बार टिमटिमाता और फिर बुझ जाता। संकेत से उन्होंने मुझे अपने पास बुलाया और अपना आँचल हटा कर नियाज़ के मलीदे की तश्तरी मुझे थमा दी।

तश्तरी लेकर मैं सोचने लगी—मौलवी साहब ने दम किया है यह नियाज़ का मलीदा, अब राहत के तन्दूर में झोंका जायेगा। वह तन्दूर जो छः महीने से हमारे खून के छींटों से गर्म रखा गया, यह दम क्या हुआ, मलीदा मुराद पूरी करेगा, मेरे कानों में मंगलवाद्य बजने लगे। मैं भागी-भागी कोठे से बरात देखने जा रही हूँ, दूल्हा के मुँह पर लम्बा-सा सेहरा पड़ा है। जो घोड़ों की आयलों को चूम रहा है······

चौथी के गहरे लाल रंग का जोड़ा पहने फूलों से लदी शर्म से निढाल; धीरे-धीरे पग तोलती बी आपा चली आ रही हैं। चौथी का ज़रतार जोड़ा झिलमिल-झिलमिल कर रहा है, बी अम्मा का चेहरा फूल की तरह खिला हुआ है ···बी आपा की लज्जा से बोझिल निगाहें एक बार ऊपर उठती हैं, शुक्रिये का एक आँसू ढुलक कर इनसान के ज़रदों में क़मक़मे की तरह उलझ जाता है।

"यह सब तेरे ही परिश्रम का फल है···" बी आपा की चुप्पी कह

हरी है··· हमीदा का गला भर आया···

"जाओ न मेरी बहना !" बी आपा ने उसे जगा दिया, और वह चौंक कर ओढ़नी के आँचल से आँसू पोंछती ड्योढ़ी की ओर बढ़ी।

"यह ·····यह मलीदा !" उसने छलकते हुए दिल को वश में रखते हुए कहा ·· उसके पाँव काँप रहे थे, जैसे वह साँप की बाँबी में घुस आई हो, और फिर पहाड़ खिसका······और मुँह खोल दिया। वह एक दम पीछे हट गई, मगर दूर कहीं बरात की शहनाइयों ने चीख़ लगाई, जैसे कोई उनका गला घोंट रहा हो। काँपते हाथों से मुकद्दस मलीदा का ग्रास बना कर उसने राहत के मुँह की तरफ़ बढ़ा दिया।

एक झटके से उसका हाथ पहाड़ की खोह में डूबता चला गया··· नीचे भय और अन्धकार के अथाह गार की गहराइयों और एक बड़ी-सी चट्टान ने उसकी चीख़ को घोंट दिया। नियाज़ के मलीदे की रकाबी हाथ से छूट कर लालटेन के ऊपर गिरी और लालटेन ने ज़मीन पर गिर कर दो-चार सिसकियाँ भरीं और बुझ गई। बाहर आँगन में मुहल्ले की बहू-बेटियाँ मुश्किलकुशा की शान में गीत गा रही थीं।

सवेरे की गाड़ी से राहत मेहमान-नवाज़ी का शुक्रिया अदा करता हुआ रवाना हो गया। उसकी शादी की तिथि निश्चित हो चुकी थी और उसे जल्दी थी।

इसके बाद उस घर में कभी अण्डे न तले गए, पराँठे न सिके और स्वीटर न बुने गए। क्षय रोग, जो बहुत दिनों से बी आपा की ताक में भागा पीछे-पीछे आ रहा था, एक ही छलाँग में उन्हें दबोच लिया और उन्होंने चुपचाप अपना विफल मनोरथ-अस्तित्व उसकी गोद में सौंप दिया।

और फिर उसी सहदरी में चौकी पर साफ़-सुथरी जाजिम बिछाई गई। मुहल्ले की बहू-बेटियाँ जुड़ीं। कफ़न का सफ़ेद-सफ़ेद लट्ठा मौत के आँचल की तरह बी अम्मा के सामने फैल गया। सहनशीलता के बोझ से उनका मुँह काँप रहा था। बायीं भौंह फड़क रही थीं। गालों की

सुनसान झुरियाँ भाँय-भाँय कर रही थीं। जैसे उनमें लाखों अजगर फुंकार रहे हों।

लट्ठे की कान निकाल कर चौपर्ता किया और उनके दिल में अनगिनत कैंचियाँ चल गईं। आज उनके मुँह पर भयानक शान्ति और हरा-भरा संतोष था, जैसे उन्हें पक्का विश्वास हो कि दूसरे जोड़ों की तरह चौथी का जोड़ा सैंता न जाये।

एक दम सहदरी में बैठी लड़कियाँ-बालियाँ मैनाओं की तरह चहकने लगीं। हमीदा भूतकाल को दूर झटक कर उनके साथ जा मिली। लाल टूल पर......सफ़ेद गजी का निशान ! उसकी लाली में न जाने कितनी निरीह दुलहिनों का सुहाग रचा है और सफेदी में कितनी विफल-मनोरथ कुंवारियों के कफ़न की सफ़ेदी डूब कर उभरी है। और फिर सब एकदम चुप हो गये। बी अम्मा ने अन्तिम टाँका भर कर डोरा तोड़ लिया। दो मोटे-मोटे आँसू उनके रुई-जैसे नरम गालों पर धीरे-धीरे रेंगने लगे। उनके चेहरे की सिकुड़नों में से प्रकाश की किरणें फूट निकलीं और वह मुसकरा दीं जैसे आज उन्हें सन्तोष हो गया था कि उनकी कबरी का चौथी का जोड़ा बन कर तैयार हो गया है, और कोई दम में शहनाइयाँ बज उठेंगी।

हरामज़ादी

मुहम्मद हसन अस्करी

दरवाज़े की धड़-धड़ और "किवाड़ खोलो" की लगातार और हठी चीखें उसके मस्तिष्क में इस तरह गूँजीं जैसे गहरे अँधियारे कुएँ में डोल गिरने की लम्बी कराहती हुई आवाज़। उसकी स्वप्न-भरी और अर्द्ध-प्रसन्न आँखें धीरे-धीरे खुलीं; लेकिन दूसरे क्षण ही मुँह-अन्धेरे के हल्के-हल्के उजाले में मिली हुई सुर्मा-जैसी स्याही उसके पपोटों में भरने लगी। और वे फिर बन्द हो गईं! आँखों के पर्दे बोझिल कंबलों की तरह नीचे लटक गये और डलों को दबा-दबा कर सुलाने लगे। लेकिन कान आँखों का साथ देने वाला संगीत छोड़ कर भनभना रहे थे। वे इस तड़के उठ कर लोगों की चीज़ें उठा ले जाने वाले आक्रमणकारी के ताज़े आक्रमण के विरुद्ध अपनी श्रवण-शक्ति बन्द कर लेना चाहते थे।···और फिर भी वे भनभना रहे थे। आशा व डर की खींचा-तानी, जिसे नींद कदाचित् शीघ्र अपने प्रवाह में डुबा लेती, अधिक समय तक स्थिर न रही। अब की तो दरवाज़े की चूलें तक हिली जा रही थीं और आवाज़ें अधिक अधीर, निर्बल, कठोर और भर्राये हुए कंठ से निकल रही थीं। "ख़ोलो···खोलो" यह स्वर पतली नोकदार तीलियों की तरह मस्तिष्क में घुस कर नींद के पर्दों को तार-तार किये दे रहा था। वह यह भी सुन रही थी कि पुकारने वाला "खोलो···खोलो" के बीच के समय में धीरे से अप्रसन्न विचारों को व्यक्त भी कर देता था। यही नहीं बल्कि कोई व्यक्ति उसे सड़क के ढेलों का उपयोग करने की शिक्षा दे रहा था···अन्त में उसने आँखें पूरी खोल ही दीं और हाथों को चारपाई पर

झटकते हुए कहा, "नसीबन देखो तो कौन है ?"

यह उसके लिये कोई नई बात न थी। जब से वह इस कसबे में मिडवाइफ़ होकर आई थी, यह सब कुछ प्रतिदिन होता था। यही चिल्लाहटें, धड़-धड़ाहट, कर्तव्य और आराम की यही कड़वी खींचातानी, यही झल्लाहट और कोलाहल सब उसी तरह। उसे सवेरे ही उठ कर जाना पड़ता था। और फिर उसका सारा दिन आगन्तुकों से चीख़ते-चिल्लाते, हाथ-पाँव फेंकते दुनिया में आते हुओं को देखने में, कुछ दिन आये हुओं की बढ़ती हुई गति के निरीक्षण में और आवागमन की संख्या-लेखन के लिए टाउन-एरिया के दफ़्तर तक बार-बार दौड़ने में गुज़रता था। उसे दोपहर का भोजन करने और विश्राम करने का समय भी हज़ार खींच-तान के बाद मिलता था; और वह भी निश्चित न था। क्योंकि बच्चे पैदा होने में अवसर व महल का तनिक भी ध्यान नहीं करते। सुबह चार बजे, या दोपहर के बारह बजे, उसे हर समय तैयार रहना था और बच्चे थे कि ऐसी तेज़ी से चले आ रहे थे जैसे पहाड़ी नदी में लुढ़कते हुए पत्थर। संतान-निग्रह के चरचे दौलत नगर को शहर से मिलाने वाली कच्ची और गढ़ों वाली सड़क को पार न कर सके थे और अगर किसी तरह वे रेंगते हुए वहाँ तक पहुँच भी जाते तो यह निश्चय बात थी कि क़सबे वाले उन्हें ज़रा भी सम्मानित न समझते। क्योंकि वे अच्छी तरह जानते थे कि बच्चे ईश्वर की इच्छा से पैदा होते हैं। उस में मनुष्य का क्या अधिकार। १८ वर्षीय लड़के, ५५ वर्षीय बुड्ढे, अल्लहड़ लड़कियाँ, अध-वयस स्त्रियाँ सब-के-सब आश्चर्यजनक परिश्रम और संयोग के साथ सड़कों की नालियों में खेलने वाले बच्चों की संख्या में वृद्धि किये चले जा रहे थे गोया वे राष्ट्रीय रक्षा के लिये कारखानों में काम करने वाले मजदूर हैं। और फिर वे बेचारे करते भी क्या ? वे तो ईश्वर की आज्ञा से असमर्थ थे। तात्पर्य यह कि बच्चे चले आ रहे थे। काले बच्चे, पीले बच्चे, मुर्ग़ की तरह लाल बच्चे और कभी-कभी गोरे बच्चे। दुबले-पतले, हड्डियों का ढाँचा या कोई-कोई मोटे-ताज़े

बच्चे। मुड़े हुए बालों वाले, चपटी नाक वाले, छछूँदर की तरह गिलगिले, लकड़ी-जैसे कठोर, हर रंग और हर प्रकार के बच्चे।

एमली ने अपनी दादी से सुना था कि उनके बचपन में एक मरतबा पाव-पाव-भर के मेंढक बरसे थे। वह कभी-कभी सोचा करती थी ···और उस समय उसे अचानक हँसी भी आ जाती थी··· कि ये बच्चे वही बरसने वाले मेंढक हैं। पाव-पाव भर के पीले-पीले मेंढक।

और उसे उन्हीं पीले मेंढकों की बरसात से प्रत्येक बूँद को बरसते हुए देखने के लिये क़सबे की टूटी-फूटी रोड़ों की सड़कों, संकरी और अँधेरी भीगी हुई गलियों, धूल-मिट्टी-कूड़े कर्कट के ढेरों, भूँकते हुए लाल-पीले कुत्तों और किसानों की गाड़ियों और घासवालियों से ठँसे हुए बाज़ारों में सारा-सारा दिन घूमना पड़ता था। पतली-पतली सड़कों पर दोनों ओर रेत की गोट अवश्य बनी होती और फिर नालियाँ तो ठीक सड़कों के बीचों-बीच बहती थीं। जिन की कालिख किसी गवाँरिन के बहे हुए काजल की तरह सड़क का अधिकाँश भाग अपहरण किये रहती थी। सफ़ाई के भंगी नालियों की गंदगी समेट-समेट कर सड़क पर फैला देते थे। जिनसे अपनी साड़ी को रक्षित रखने के लिये एमली को हल्के-हल्के फ़ीरोजी सैंडिल के बदले में ऊँची एड़ी वाला जूता पहनना पड़ता था। यद्यपि इस दशा में सड़क के उभरे हुए असंख्य कंकड़ उसके पैरों को डगमगा देते थे। रास्ता में गुल्ली-डण्डा और कबड्डी खेलने वाले लौंडों की धमा-चौकड़ी उसके कपड़ों पर हर बार अपना चिन्ह छोड़ जाती थी, मगर सन्तोष की बात यह थी कि वह हमेशा अपनी आँखें और दाँत सलामत ले आती थी। और यहाँ की गर्मी! उसे मालूम होता था कि वह अवश्य पसीनों में घुल-घुल कर समाप्त हो जायेगी। उन तंग सड़कों पर सूर्य इस तेज़ी से चमकता था कि उसके शरीर पर चिनगारियाँ नाचने लगतीं और उसकी नीले फूलों वाली छतरी केवल एक बोझ बन जाती। जब वह अपनी ऊँची एड़ियों पर लड़खड़ाती, सँभलती, धूप में जलती-भुवती सड़कों पर से

गुज़रती तो उसे दूर आल्हा गाने की आवाज़, ढोल की खटखट और पेड़ के नीचे ताश की पार्टियों के ऊँचे और कठोर अट्टहास, दोपहर की नींद हराम कर देने वाली बोझिल मक्खियों की भनभनाहट की तरह अप्रसन्न और अरुचिकर मालूम होते और वह चार महीने पहले छोड़े हुए शहर का ख़याल करने लगती। मगर शहर इस समय स्वप्नों की वह दुनिया बन जाती है जिसे सवेरे उठ कर हज़ार प्रयासों के होते हुए याद नहीं किया जा सकता और जिनकी मधुरता का विश्वास दिन-भर दिल को व्याकुल किये रखता है। उसे कुछ प्रकाश-सा मालूम होता······एक चमक, एक विस्तार, एक छिपाव······कुछ हरियाली उसके सामने तैरती और वह फिर तपते हुए कंकड़ों, नालियों और रेतवाली सड़क पर लड़खड़ाती, सँभलती चल रही होती। बिजली के पंखे वाले कमरे की कल्पना तक तपन और जलन को कम करने में उसकी सहायता न करती थी। लेकिन हाँ! जब कभी वह सौभाग्य से रात को स्वतंत्र होती और उसे अपने बिस्तर पर कुछ देर तक जागने का अवसर मिल जाता तो उस समय शहर के जीवन की तसवीरें सिनेमा के पर्दे की तरह पूरी तरह प्रकाश और स्वच्छता के साथ उसकी नज़रों के सामने गुज़रने लगतीं और वह जिस तसवीर को जितनी देर चाहती, ठहरा लेती। लेकिन जब वह उन चित्रों से आनन्द उठाने के मध्य उन दृष्यों को याद करती जिनसे उसे प्रत्येक समय दो-चार होना पड़ता था तो उसकी खिन्नता और थकावट धीरे-धीरे झलक उठती। घर की दीवारें रात के अन्धकार के साथ उस पर झुक पड़तीं। दिल बैठने लगता। साँस गर्म और कठिन हो जाती और उसका सिर घुमन खा-खा कर नींद की अचेत अवस्था में डूब जाता और वह स्वप्न में देखती कि वह फिर उसी शहर के अस्पताल में पहुँच गई है। मगर उन दरवाज़ों और दीवारों से बजाय मेल-जोल के कुछ परायापन-सा टपकता है। और स्वयं उसके सम्मान में अयोग्य व्यवहार हो गये हैं। और कोई अज्ञात भय उसके दिल पर सवार था। वह सुबह तक यही

स्वप्न तीन-चार बार देखती और वास्तव में उसके लिये उन ज़िन्दगियों का पश्चात्ताप होना भी चाहिये था; और ऐसे ही प्रभाव पैदा करने वाला। माना कि शहर में भी ऐसी ही मिली हुई गलियाँ, टूटी-फूटी सड़कें, धूल, मिट्टी, नटखट लड़के मौजूद थे, और वह उनकी अनुपस्थिति से अनजान न थी, लेकिन वह तो हवा की चिड़ियों की तरह उन सब से निश्चिन्त और सन्तुष्ट ताँगे के गद्दों पर झूलती हुई बिना सोचे कभी दसवें-पन्द्रहवें दिन निकल जाया करती थी। उसकी दुनिया तो उन अधिकार-क्षेत्र ज़िला के प्रधान अस्पताल में थी। कितनी खुली हुई जगह थी वह, और वहाँ की हवा का आनन्द तो सारी उम्र न भूल सकेगी। अस्पताल के सामने तारकोल की चौड़ी सड़क थी, जो हमेशा शीशे की तरह चमका करती थी। जब वह अपनी सहेली डैना के साथ उस पर टहलने के लिए निकलती थी तो दूर-दूर तक फैले हुए खेतों और मैदानों पर से आने वाली ठण्डी हवा के झोंके चेहरे और आँखों पर लग-लग कर मस्तिष्क को हल्का कर देते थे। उसकी साड़ी फड़फड़ाने लगती, माथे पर बालों की एक लड़ी तैरती और उसकी चाल सुन्दर और तेज़ हो जाती। ऐसे समय बातें करना कितना भला और आनन्ददायक होता था; धूल और मिट्टी का तो वहाँ नाम भी न था। मई-जून के लू के झकोरे भी अस्पताल की सफ़ेद और शीशों वाले भवनों पर से सनसनाते हुए शहर की ओर चले जाते थे और बिजली के पँखे से शीतल रहने वाले कमरों में दोपहर की कठोरता और उदासी अपनी छाया तक न डाल सकती थी। जब वह वैभव-भरे भाव से साड़ी का पल्ला सम्भाले गुज़रती थी तो अस्पताल के नौकर चारों तरफ़ से उसे 'मेम साहब' कह कर सलाम करने लगते थे। यद्यपि यहाँ भी इसे सब लोग मेम साहब ही कहते थे, सड़कों पर झाड़ू देने वाले भंगी उसे आते देख कर थम जाते थे, बल्कि कसबा के ज़मींदार तक उसे 'आप' सम्बोधन करते थे; मगर फिर भी यहाँ वह बात कहाँ प्राप्त हो सकती थी। वह रुआब, वह दबदबा, वह मालिकाना अनुभव, वहाँ तो उसका व्यक्तित्व अस्पताल की एक अधिकारिणी

का था। इस सफ़ेद ठंडी और दृढ़ इमारत और उसके बनाये हुए मगर अटल विधानों और नियमों के एक ज़िन्दा शरीरधारी अस्पताल के द्वार के सामने आने के बाद कोई भी व्यक्ति अनुचित प्रदर्शन नहीं कर सकता था। उसी तरह उसकी सीमाओं में प्रवेश होने वाली प्रत्येक वस्तु को उसकी इच्छा का अनुचर होना पड़ता था। जब इसका रोगियों की जाँच का समय आता था तो वार्ड में पहले ही से तैयारियाँ होने लगती थीं। वह दो रुपये प्रतिदिन किराया देने वालियों तक को झिड़क देती थी, क्योंकि उसे अपने स्वच्छ कमरों में पान की पीक तक देखना सह्य न था। वह बड़ी-बड़ी कोमल स्वभावों की ज़रा-सी असतर्कता और नियमों की विरुद्धता पर बुरी तरह डाँटती थी और हमेशा सबसे तुम कह कर बोलती थी। मगर यहाँ की स्त्रियाँ तो बहुत ही मुँहफट थीं। वह इससे निराश और भयभीत तो ज़रूर थीं मगर उसे दो बुरे शब्दों का उत्तर देने से न चूकती थीं। थोड़े दिन तक उन पर अपना प्रभुत्व जमाने की कोशिश करने के पश्चात् अब वह थक चुकी थी और उनकी बातों में अधिक हस्तक्षेप न करती थी। स्वच्छता और काम करने का अच्छा ढंग तो उन स्त्रियों को छू तक न गया था। प्रसूता स्त्री को गर्मी में भी तुरंत एक कमरे में बन्द कर दिया जाता था, जिसमें जाड़ों के लिहाफ़, बिछौने, चादरों और दूसरी वस्तुओं के मटके, टूटी हुई चारपाइयाँ, बर्तन, कोयलों का घड़ा, सूत और चीथड़ों की गठरियाँ, अल्लम-गल्लम भरे होते थे। और एक अँगीठी पर घुट्टी चढ़ा दी जाती थी। किसी-किसी जगह तो जल्दी-जल्दी कमरे में गोबरी होने लगती थी, जो पैरों से उखड़-उखड़ कर फ़र्श को चलने के काबिल भी न रहने देती थी और जिसकी सीलन अँगीठी की गर्मी से मिल कर साँस लेना दूभर कर देती थी। घर की सब स्त्रियाँ······ ···और वह कम-से-कम चार होती थीं, अपने दुर्गन्धयुक्त कपड़ों-समेत कमरे में घुस आती थीं और घबराहट में सारे सामान को ऐसा उलट-पुलट कर देती थीं कि ज़रा सी कत्तर

तक न मिलती थी। अन्दर की खुसर-फुसर, खड़ड़-बड़ड़, कराहों 'या अल्लाह, या अल्लाह' और स्त्रियों के बार-बार किवाड़ खोल कर अन्दर-बाहर आने-जाने से घर के बच्चे जाग जाते थे और अपने-आपको अम्मा के पास न पाकर चीख़ना शुरू कर देते थे और उनकी बड़ी बहनें चुमकार-पुचकार कर और थपक-थपक कर उन्हें बहलाने की कोशिश करती थीं "अरे चुप-चुप ·····देख भइया आया है ···सवेरे को देखो······ मुन्ना-सा भइया।" मगर सुबह को मुन्ना-सा भइया को देख सकने की उम्मीद उन्हें उस समय तक कोई ढारस न दे सकती और उनकी रों-रों दहाड़ों के रूप में परिवर्तित होकर कमरे के अशान्त वातावरण में और वृद्धि कर देती। यह तो ख़ैर जो-कुछ था, सो था; गन्दे बिस्तरों पर लेप चढ़े हुए तकियों, पसीने में सड़े हुए कपड़ों और बहुत दिनों से न धुले हुए बालों की दुर्गन्ध से जिसे गर्मी और भी दूषित कर देती थी; उसका जी उलटने लगता था। वह प्रत्येक समय हर चीज़ से दामन बचाती हुई खड़ी-खड़ी फिरती थी। उस कमरे में एक घण्टा व्यतीत करना गोया नर्क के दुष्कर्मों के लिये तैयारी करना था। यह माना कि स्वयं उसे कुछ नहीं करना पड़ता था, क्योंकि कस्बे की स्त्रियाँ अपने-आपको नये-नये अंग्रेज़ी अनुभवों के लिये पेश करने और अपने-आपको एक अजनबी और ईसाई मिडवाइफ़ के, जो अनदेखे और अनसमझे हालात से अपरिचित थी, हाथों में दे देने के लिये कदापि तैयार न थीं। इन्हें तो कस्बे की पुरानी दाई और फूटे हुए घड़े की ठीकरों पर ही विश्वास था। तो भी उनके मर्दों ने टाउन-एरिया से डर कर उन्हें उस पर सम्मत कर लिया था कि वह नई ईसाई मिडवाइफ़ की कमरे में मौजूदगी सहन कर लें। इस तरह कार्य-सम्बन्धी योग्यता से तो उसका काम बहुत कम हो गया था, लेकिन आख़िर ज़िम्मेदारी तो उस की ही थी, और वही टाउन-एरिया कमेटी के सामने हर बुराई-भलाई के लिये उत्तरदायी थी; और उस ज़िम्मेदारी से ओहदा बड़ा होना, हवाओं से लड़ना था। बहुधा नव-जननी बनने वाली लड़कियाँ इतनी चीख़ती-चिल्लातीं और हाथ-पैर

फेंकती थीं कि उन्हें वश में करना दूभर हो जाता था, या फिर ऐसी सहम जाती थीं कि वह डर के मारे ज़रा भी हिलती-डुलती न थीं। तीन-तीन चार-चार बच्चों की माँयें तो और भी आफ़त थीं। वे अपने तजरबों के सामने इस साड़ी को पहन कर बाहर घूमने वाली ईसाई औरत के अनोखे मार्गदर्शन को कोई महत्व देने को तैयार न थीं। वे अपनी आहों के बीच भी रुक कर दाई को परामर्श देने लगती थीं और एमली को दाँतों से होंठ चबा-चबाकर चुप रह जाना पड़ता था; और दाई तो भला उसकी कहाँ सुनने वाली थी, उसे अपनी श्रेष्ठता और मिडवाइफ़ की अयोग्यता का विश्वास तो ख़ैर था ही, मगर उसकी मौजूदगी से अपनी आमदनी पर प्रभाव पड़ता देख कर उसने एमली की प्रत्येक बात का खंडन करना अपना कर्तव्य बना लिया था। यद्यपि एमली ने उसके व्यंग्य-भरे वाक्यों को पीने की आदत डाल दी थी, लेकिन उसका दिल कोई पत्थर का थोड़े ही था। दाई के काम का ढंग देख-देख कर दूसरी स्त्रियाँ भी साहसी हो गई थीं। उसकी तरफ़ ध्यान दिये बिना ही वे पलंग को घेर लेती थीं और वह सब से पीछे छोड़ दी जाती थी। अब इसके सिवा क्या रह जाता था कि वह झुँझला-झुँझला कर पैर पटके और उन्हें पुकार-पुकार कर अपनी तरफ उनका ध्यान खींचने की कोशिश करे।

इन सब परीक्षाओं से गुज़रने के बाद उसे हर बार लेखन के लिये टाउन-एरिया के दफ़्तर जाना पड़ता था। उसे देखकर बख़्शीजी की आँखें चमकने लगतीं और उनके पान में सने हुए काले दाँत थोड़े परिहास के भाव में उनकी छोटी दाढ़ी और बड़ी-बड़ी मूँछों से बाहर निकल आते, और वह उसकी तरफ कुर्सी खिसकाते हुए कहते—"कहो मेम साहब! लड़का कि लड़की?" मूँछों के घने काले बालों का सामीप्य उसे निरास कर देता और उसे ऐसा मालूम होने लगता, जैसे उन बालों में अचानक बिजली की लहर दौड़ जायेगी और वे सीधे होकर उसके चेहरे से आ मिलेंगे। वह घृणा और डर से पीछे सिमट जाती और

बख्शीजी से नज़रें बचाती हुई जल्द-से-जल्द अपना काम समाप्त करने का प्रयास करती।

ये सारे झमेले निबटाती हुई साधरणतः आठ-नौ बजे रात को थकी-हारी अपने घर पहुँचती थी। जब पैर कहीं-से-कहीं पड़ रहे हों, सिर भन्नाया हुआ हो, जब शरीर का कोई अवयव एक-दूसरे का साथ देने को तैयार न हो तो भला भूख क्या ख़ाक लग सकती है? वह जूता खोल कर पैर से कोने की तरफ़ उछाल देती और कपड़े इस तरह झुँझला-झुँझला कर उतारती कि दूसरे दिन नसीबन को उन्हें धोबी के यहाँ इस्त्री कराने ले जाना पड़ता। उल्टा-सीधा भोजन कंठ के नीचे उतार कर वह बिस्तर पर गिर पड़ती। तकिये पर सिर रखते ही दीवारें, पेड़, सारी दुनिया उसके चारों ओर घूमने लगते। भेजा धड़-धड़ा, धड़-धड़ा कर खोपड़ी में से निकल भागने की कोशिश करता। सिर तकिये में घुसा जाता, मगर तकिया उसे ऊपर उछालता। बाहें बोझिल हो जातीं, हथेलियों में सीसा-सा भर जाता और हाथ ऊपर न उठ सकते। इसी तरह टाँगें भी हिलने-डुलने से इनकार करतीं; और कमर तो बिलकुल पत्थर बन जाती। वह अपने पुराने अस्पताल को याद करना चाहती। मगर वह किसी चीज़ को भी पूरी तरह याद न कर सकती ···खिड़की की किवाड़ें, रोगियों की लोहे की चारपाई का पाया, मोटर के पहिये, नीम के पेड़ की चोटी, पान में रचे हुए काले दाँत और घनी कठोर मूँछें ये सब बारी-बारी बिजली के कौंधने की तरह सामने आते और पलक झपटने में मिट जाते। वह खिड़की के किवाड़ में एक कमरा जोड़ना चाहती, मगर उसमें अधिक-से-अधिक एक चटख़नी की वृद्धि कर सकती, बल्कि किसी समय लोहे की चारपाई का एक पाया तो एक खूँटे की तरह उसके मस्तिष्क में गड़ जाता और कोशिश करते हुए भी टस-से मस न होता। नीम की चोटी को तना हासिल न हो सकता ··· फिर नीम की हरी-हरी चोटी पर एक रेत के पाट वाली नाली बहने लगती और खिड़की के शीशे पर पान में सने हुए काले दाँत मुसकराते और

घने कठोर बालो वाली मूँछे हिलती··· भिन्न-भिन्न आकृतियाँ एक-दूसरे से हाथ मिलाते हुए गले से लिपट जाती और मस्तिष्क के एक सिरे से दूसरे सिरे तक लडती-झगडती, टकराती, रौदती, दौडती ··· काले आकाश पर प्रकाशित असख्य तारो के गुच्छे-के-गुच्छे भुनगो की तरह आँखो मे घुस-घुस कर नाचने लगते। जलती हुई आँखे कनपटियो के स्वप्नवत् भद-भद से धीरे-धीरे बन्द हो जाती ···सोने के बाद तो उन आकृतियो के और भी छोटे-छोटे टुकडे हो जाते जो बारी-बारी आते और उसके मस्तिष्क पर चिपक जाना चाहते। इतने ही मे एक दूसरा आ पहुँचता और पहले वाले को धक्के देकर बाहर निकाल देता। अभी यह खीचा तानी खत्म भी न हुई कि एक तीसरा आ धमकता। उन सब की प्रतिद्वन्द्विता बल तोल कर उसे बार-बार चौंका देती और वह हल्की-सी कराह के साथ आँखे खोल देती ·· फिर आखो मे तारो के गुच्छे-के गुच्छे भरने लगते ·· · कही प्रात काल के समीप जाकर ये आकृतियाँ थकती और अपनी युद्ध-भूमि से प्रस्थान करती। मन्द-मन्द हवा भी चलनी शुरू हो जाती और एमली नीद मे बिलकुल अचेत हो जाती, मगर उस की नीद पूरी होने से पहले—"किवाड खोलो" की लगातार और हठी चीखे उसके दिमाग मे गूँजती ·····वही धडधडाहट, कर्तव्य और विश्राम की वही कडवी खीचातानी, वही झल्लाहट और कोलाहल।

नसीबन बाहर से लौट आई थी। उसे शेख़ सफदर अली के यहाँ बुलाया गया था और पुकारने वाले ने बार-बार कहा था "जल्दी ·· बुलाया है ···जल्दी " प्रत्येक यही कहता हुआ आता है जल्दी · आखिर वह क्यो जल्दी करे? क्या वह उनकी नौकर है? या वह उसे दौलत बख्श देते है ···हुँ·······जल्दी! वह न पहुँचेगी तो क्या सब मर जायेंगे? और फिर वे करेंगे ही क्या बुलाकर?······ कहती है चुडैलें 'इसे क्या खाक आता है ······ " कुछ नही आता ···अच्छा फिर? बैठें अपने घर, कौन उनकी चापलूसी करने जाता है? ··कुछ नही आता! जैसे-जैसे आले (यन्त्र) उसने देखे हैं, इन

लोगों के तो स्वप्न में भी न आये होंगे······चमकदार, तेज, हाथी-दाँत के मूठ वाले······और वह डाक्टर कार्ट फ़ील्ड के लेक्चर। वह नक्शे दिखा-दिखा कर शरीर के भागों को सम्भालती थी कुछ नहीं याद आता······हुँह !

एमली के अधरों पर मुसकराहट आ गई। पहले तो उसका जी चाहा कि कहलवा दे वह जल्दी नहीं आ सकती। वह बिलकुल नहीं आयेगी। मगर फिर उसे ध्यान आया कि ये लोग केवल अज्ञानी ही तो हैं, इनके कहने से उसका बिगड़ता क्या है, और आख़िर ज़िम्मेदारी तो स्वयं उसकी ही है। चुनाँचे उसने नसीबन से कहा—"कह दो कि चलो मैं आ रही हूँ।" सन्तुष्ट होकर उसने करवट ले ली। सिर को तकिये पर ढीला छोड़ दिया। आँखें बन्द कर लीं। एक बाँह बिछौने की ठण्डी चादर पर फैला दी और हाथ चेहरे पर रख लिया। उसने चाहा कि दिमाग़ को बिलकुल रीता कर ले और गति-रहित हो जाये, मगर उसके दिल की खटखट-खटखट कानों में बज रही थी और थोड़ी-थोड़ी देर पश्चात् अचानक एक पत्थर-सा मस्तिष्क में आकर लगता था, "जल्दी······" जिससे उसके मस्तक और कनपटियों की नसें तन जाती थीं और टूटती मालूम होने लगती थीं। उसे जल्दी जाना था।··· जल्दी ···और इसी बात के तो वह टाउन-एरिया कमेटी से तीस रुपये पाती थी। जल्दी जाना था लेकिन आख़िर वह कर्त्तव्य पर स्वास्थ्य को तो बलिदान नहीं कर सकती थी। कल रात ही उसे बहुत देर हो गई थी, वह मनुष्य ही तो थी, न कि मशीन।······अब वह अनुभव कर रही थी कि उसके सिर में पीड़ा हो रही है, कमर बैठी जा रही है और कन्धे और टाँगें निर्जीव हो गये हैं। ऐसी दशा में इतना शीघ्र उठ जाना बहुत हानि-कारक होगा, और विशेष रूप से इस कस्बा-जैसी जलवायु में जहाँ उसका स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिरता जा रहा है। अभी आखिर चार महीने में उसे चार दिन ज्वर आ चुका था······और फिर वह वहाँ जाकर बना ही क्या लेगी? उन लोगों की ऐसी क्या विशेष आवश्यकता है

उसकी ?······थोडा-सा और सो लेना ही उचित होगा।

वह सो जाती, मगर उँगलियो के बीच मे होकर प्रात.काल का प्रकाश आ रहा था और उसके नेत्रो को बन्द न होने देता था। उसने हाथ आँखो पर खिसका लिया और आँखे खूब भीच कर बन्द कर ली। अब उसे झपकियाँ आनी शुरू हो गईं, मगर प्रत्येक बार "दूध लो दूध" "अबे सवेरा" "उठ बैठ! ऐ पढने नही जाने का ?" की प्रतिध्वनियाँ और नसीबन के लकडियाँ तोडते और देगचियाँ उठाने की आवाजो से चौक उठती थी। सोने का प्रयास करते-करते उसकी आँखो मे पानी भर आया, सिर मे दर्द होने लगा और माथा जलने लगा। वह निराश होकर सीधी लेट गई और आँखो पर दोनो बाजू रख लिये। अब उसके शरीर के भाग और भी बोझिल और गतिहीन हो गये और वह उन प्रतिध्वनियो, आवाजो, उन आज्ञाकारी बुलाहटो,····· "जल्दी बुलाया है," इस प्रात काल की निर्मलता और कस्बे पर दाँत पीसने लगी। वह चाहती थी कि कोई ऐसी चादर ओढ ले जो उसको इन प्रतिध्वनियो, आवाजो और आज्ञाकारी बुलाहटो, "जल्दी बुलाया है," इस प्रात काल की निर्मलता, इस कस्बे और सब को छिपा ले। जिसके नीचे इन मे से किसी की भी पहुँच न हो। जहाँ वह सबसे ··अपने-आप से बेसुध हो जाये··· ···अपने को खो दे····· उसे अनुभव हुआ कि दो सबल और बहुत दिन की पहचानी बाहे उसके शरीर को जकड कर समेट रही है·····सिर की पीडा को जैसे कि सहसा किसी ने पकड लिया··· दो नेत्र भी कुछ दूरी पर चमके, मुसकराते हुए मालूम हुए और उसने अपने-आपको उन बाहो की जकड मे छोड़ दिया··· · शरीर हवा की तरह हल्का हो गया था। सिर हल्के-हल्के झकोरे खाता लहरो पर बहा चला जा रहा था। मन मे शान्ति थी, मौनता थी और केवल हृदय की प्रसन्नता से धडकने का शब्द आ रहा था··· ··दो बाँहे उसके शरीर को जकड रही थी और बहुत दिनों की प्रेमी बाहे···

उसने डरते-डरते आँखे खोली। प्रभात के प्रकाश मे चमक आ गई

थी। नसीबन ने चूल्हे पर देगची रखी। बकरी वाला मुहल्ले से जाने के लिये बकरियाँ एकत्र कर रहा था और कुएँ की गरारी ज़ोर-ज़ोर से चल रही थी। उसकी आँखें ऊपर उठीं और हवा में किसी वस्तु को ढूँढ़ने लगीं ···दो बादामी छायाएँ उतरने लगीं। आँखों के पर्दे फड़के और पलकें शनैः-शनैः एक-दूसरे से मिल गईं ·········गोया वह इन छायाओं को फँसा लेना चाहती है······परछाइयाँ कुछ दूर ऊपर रुक गईं। वे डगमगाईं और धुँधली होते-होते हवा में मिल गईं········· आँखें प्रातःकाल के बेरंग आकाश को देख रही थीं। उसकी गर्दन ढुलक गई और बाँहें दोनों ओर गिर पड़ीं ·····दो बहुत दिन की प्रेमी बाँहें·· ···मगर यहाँ वे कहाँ ?

कुछ क्षरग अचेत पड़े रहने के बाद वह विलमैन को याद करने लगी। लम्बे-लम्बे पीछे उलटे हुई बाल, चौड़ा सीना, लाल डोरों वाली जल्द-जल्द फिरती हुई आँखें, मोटा-सा निचला अधर, कान की लौ तक कटी हुई कलमें, साँवले रंग पर मुँड़ी हुई दाढ़ी का गहरा निशान, आँखों के नीचे उभरी हुई हड्डियाँ और बलवान बाँहें··· दिन में कितनी-कितनी मर्तबा उसके बाज़ू उसे कसते थे और उनके मध्य वह बिलकुल बेबस हो जाती थी; और कई बार तो झुँझला पड़ती थी, मगर उसके उत्तर में उसका प्यार और बढ़ जाता था।······और उसके दोनों कपोलों पर वे गरम रसीले चुम्बन और······दिन में कितनी-कितनी बार! उसके मुँह से मदिरा की तीक्ष्ण दुर्गन्ध तो ज़रूर आती थी मगर वह कैसे मनोवेग से उसे अपनी बाँहों में उठा लेता था और पागलों की तरह उन्मत्त होकर उसके चेहरे, हाथों, गर्दन, सीने सब पर चुम्बन दे डालता था और फिर अट्टहास मार-मार कर हँसता था—"मेरी जान·········हा हा हा हा ए मी ली·········डीयर·······प्यारी प्यारी ··· हा हा हा हा ···" और वह कैसी देख-रेख करता था। वह उससे अपने बाजुओं में पूछता—"इस महीने में कैसी साड़ी लाओगी मेरी जान ?······ हैं ? इस छाती पर तो, लाल खिलेगी!

कहो, कैसी रही ? हा हा हा हा······ ···" और वह उसे दोपहर में तो कभी न निकलने देता था। अगर उसे ऐसे समय अस्पताल से बुलाया जाता तो वह कहलवा देता कि मिस विलमैन सो रही हैं। और वह उसके उठने से पहले चाय तैयार करा के अपने उस के निकट के मेज़ पर ला रखता था और वह उसे कितने प्यार से भींचता था, मगर वह यहाँ कहाँ !·········अगर वह यहाँ होता तो वह उसे इतने प्रातःकाल कहीं न जाने देता। वह यहाँ होता तो वह स्वयं कहीं न जाती; वह तो ऐसे किवाड़ पीट कर जगाने वाले का सिर तोड़ देता।·········लेकिन वह यहाँ होता··· ·· वह इसके पास होता तो वह स्वयं यहाँ क्यों होती ?

लेकिन··· कुछ दूसरी आकृतियाँ उभरीं·········अच्छा ही है कि वह उसके पास नहीं है······उसके बाल उलझे हुए और बिखरे हुए थे, और वह इस तरह दाँतों से अधर चबा रहा था गोया उसका कीमा करके रख देगा और वह इसे कैसी निर्दयता से बैंत से पीटता था—"ले ·········और लेगी ··· बड़ी बन के आई है वहाँ से वह········· अगर मेम साहब शोर सुन कर न आ जातीं तो न मालूम वह अभी और कितना मारता। एमली अपनी बाहों पर निशान ढूँढ़ने लगी ऐसे अत्याचारी से तो छुटकारा ही अच्छा·········कैसी खूनी आँखें, और आख़िर में वह शराब कितनी पीने लगा था·········मगर वह होता तो उसे इतने सवेरे कहीं न जाने देता······ ···माना कि वह डैना के साथ रात को बड़ी देर टहलता रहता था ; लेकिन ऊपर से देखने में तो उसके साथ उसका व्यवहार वैसा ही रहा था ······अगर वह खुद इतना न बिगड़ती और उसे उठते-बैठते ताने न देती तो सम्भव है बात यहाँ तक न पहुँचती··· वह उसे कितने प्यार से दबाता था ··· लेकिन वह लम्बे मुँह पर हड्डियाँ निकली हुई, जैसे सूखी लकड़ी ही··· ··· और फ्राक पहनने का बड़ा शौक था आपको, बड़ी मेम साहब बनती थीं, चार अक्षर अंग्रेज़ी के आ गये थे, तो ज़मीन पर पैर न रखती थी मारे शेखी के;······ न मालूम ऐसी क्या चीज लगी हुई थी उसमें

जो वह ऐसा लट्टू हो गया था ·········उसने ख्वाहमख्वाह चिन्ता की, वह स्वयं थक कर उसे छोड़ देता··· ···वह उसे थोड़े दिन यों ही चलने देती तो क्या था ?··· मगर उसने कैसी निर्दयता से उसे मारा था·········हाँ·········एक बार मार ही लिया तो क्या हो गया, वह स्वयं भी लज्जित मालूम होता था और उसके सामने न आता था······ और अगर डैना उसे इतनी उकसाती रही ··· यह अच्छी दोस्ती है ······अब वह डैना से नहीं बोलेगी और अगर वह मिलेगी भी तो वह मुँह फेर कर दूसरी ओर चल देगी। और जो डैना उससे बोली तो वह साफ़ कह देगी कि वह धोखा देने वालों से नहीं बोलना चाहती ···डैना बिगड़ जायेगी तो बिगड़ा करे, अब वह शहर के अस्पताल से चली ही आई; अब कोई नित्य का काम-काज है नहीं कि बोलना ही पड़े।·········वह इसी तरह डैना के छल पर मन-ही-मन कुढ़ती और क्रुद्ध होती रहती, अगर नसीबन उसे न पुकारती—"अजी मेम साहब उठो सूर्य निकल आया।" वह हड़बड़ा कर उठ बैठी और चारों ओर देखा, अब तो सचमुच उसे चलना चाहिए था, मगर फिर भी पलंग से नीचे उतरने से पहले उसने कई बार अंगड़ाइयाँ लीं और तकिये पर सिर रगड़ा।

वह मुँह धोकर चाय की प्रतीक्षा में फिर बिछौने पर आ बैठी। नसीबन लकड़ियों को चूल्हे में ठीक करती हुई बोली—"मुनियायन कह रही थी कि तम्हारी मेम साहब दो ईद का चाँद हो गईं, कभी आकर भी नहीं झाँकतीं·········अजी हो ही आओ उनकी तरफ़ मेम साहब किसी दिन, बड़ा याद करती है तुम्हें !"

हो ही आये उनकी तरफ़······क्या करे वह जाकर। मैले-कुचैले पलंगों पर बैठना पड़ता है। टूटे-टाटे यहाँ की स्त्रियों से वह क्या बातें करे ? बस इन्हें तो कहानियाँ सुनाते जाओ कि उसके बच्चा मरा हुआ ; उसको इतनी तकलीफ़ हुई ; उसको ऐसी बीमारी थी ; वह कहाँ तक लाये ऐसे क़िस्से सुनाने को ? और कोई बात तो जैसे आती ही नहीं इन्हें····· और फिर ये लोग कितनी अशिष्ट हैं। सड़े हुए कपड़े लेकर

सिर पर चढ़ जाती हैं··· ··इन लोगों के हाथ का पान खाते हुए कितनी घिन आती है। मगर विवश होकर खाना ही पड़ता है ·· जब वे इससे बातें करती हैं तो हल्के-हल्के मुसकराती जाती हैं जैसे उसका मज़ाक उड़ा रही हों······भेदभरी आँखों से एक-दूसरे को और सारे घर को देखती जाती हैं, गोया वह चोर है और उनकी आँख बचते ही कोई चीज़ उड़ा देगी। यह इससे सब स्त्रियाँ झिझकती क्यों हैं? क्या वह इनकी तरह स्त्री नहीं है? या वह कोई हौआ है ···अजब बेवकूफ़ हैं ये स्त्रियाँ······और हाँ जब वह इन के यहाँ जाती है तो उनके संकेत से जवान लड़कियाँ जल्दी-जल्दी भाग कर कमरे में छिप जाती हैं और भीतर से झाँक-झाँक कर उसे देखती हैं। और यदि कहीं उसकी निगाह पड़ जाये तो तुरन्त हट जाती हैं और भीतर से हँसने की आवाज़ आती है और अगर उन्हें इसके सामने आना ही पड़ जाये तो वे शरीर चुराती हुई ऊपर से नीचे तक खूब दुपट्टा ताने हुए आती हैं जैसे उसकी नज़र इनमें से कुछ छुटा लेगी या उसकी निगाह पड़ जाने से इनमें कोई अपवित्रता लग जायेगी।··· उनकी यह क्रिया उसे किञ्चित् मात्र भी पसन्द नहीं। क्या उन्हें इस पर भरोसा नहीं और वे इस पर संदेह करती हैं। ··· इससे तो उनके यहाँ न जाना ही अच्छा, बैठें अपनी लड़कियों को लेके अपने घर में और वे गन्दे बच्चे, मिट्टी में सने, नाक बहती, आधे नंगे, पेट निकला हुआ, वे सामने आकर खड़े हो जाते हैं और इसे ऐसे ध्यान से देखते रहते हैं, जैसे वह नया पकड़ा हुआ कोई अद्भुत जानवर है······और जब वह उनसे बोलती है तो वे सीधे बाहर भाग जाते हैं ···जंगली हैं बिलकुल जानवर··· बिलकुल······और यह खूब है कि इसके पहुँचते ही वहाँ झाड़ना शुरू हो जाता है। मारे धूल के साँस लेना कठिन हो जाता है। तनिक भी खयाल नहीं स्वास्थ्य का इन्हें, और कोई क्यों उनके यहाँ जाकर रोग मोल ले। और उनके पुरुष, कितनी शर्म आती है इसे उन कामों से। वे हमेशा ड्यौढ़ी में रास्ता घेरे बैठे हैं और

जब तक वह बिलकुल निकट न पहुँच जाये नहीं हटते।···"अरे हुक्का हटा लो, हुक्का हटा लो।" उठते-उठते ही इतनी देर लगा देते हैं कि वह घबरा जाती है···जान के करते होंगे ये ऐसी बातें ···ताकि खड़ी रहे वह थोड़ी देर वहाँ ·········और जब भीतर पहुँच जाती है तो उसे ज़ोर से हँसने की आवाज़ आती है। कैसे बुरे व्यवहार के हैं··· अंग्रेजों के यहाँ कितनी इज्ज़त होती है स्त्रियों की। वे बुढ्ढे पादरी साहब जो आया करते थे, बहुत अच्छे आदमी थे। बेचारे हर एक से कोई-न-कोई बात ज़रूर करते थे। बल्कि उसे तो वह पहचान गये थे।··· सब मिल कर जाया करते थे इतवार को गिर्जा, वह खुद डैना, किटी, मेरी, शीला और हाँ मरसी······मिसेज़ जेम्स का कितना परिहास उड़ाते थे सब मिलकर। सबसे पीछे चलती थीं छतरी हाथ में लिए हाँफती हुई ; और उनमें था ही क्या ? हड्डियों का ढाँचा थीं बस।······और गिर्जा से लौटते हुए तो और भी आनन्द आता था। सब चलते थे आपस में हँसते-परिहास करते······उपफ़ोह ! शीला कितनी हँसोड़ थी। कैसे-कैसे मुँह बनाती थी। जब हँसने पर आती थी तो रुकने का नाम न लेती थी।·········मगर यहाँ वे सब बातें कहाँ······अब तो जैसे मनुष्यों में रहती ही नहीं···और सचमुच क्या आदमी हैं यहाँ वाले ? प्रथम तो उसे इतना अवकाश कहाँ मिलता है ? प्रत्येक समय पाँव में चक्कर रहता है और फिर ऐसों से क्या मिले ? जैसे जानवर ···न कोई बात करने को ; न कोई तनिक हँसने-बोलने को, बस आओ और पड़ रहो···ले-दे के रह गई नसीबन तो उसे इसके सिवा कोई बात ही नहीं आती कि उसका बेटा भाग गया ; उसकी अपने मियाँ से लड़ाई हो गई ; उसके यहाँ बरात बड़ी धूम-धाम के साथ आई। उसे क्या इन बातों से ? हुआ करे, इससे प्रयोजन या बहुत हुआ तो इसे निष्प्रयोजन डराती रहेगी चोरों के किस्से सुना-सुना-कर··· एक क़िस्सा उसने सुनाया था कि एक दूसरे क़स्बे की मिडवाइफ़ को कुछ लोग कैसे बहका कर ले गये थे और उसके साथ कैसा व्यवहार

किया था।•••बकती है, भला कहीं यों भी हुआ है। लेकिन कहीं अगर इसके साथ ··· मगर नहीं बेकार का डर है······जो यों हुआ करे तो लोग घर से निकलना छोड़ दें······भला दुनिया का काम कैसे चले··· पागल है बुढ़िया, बहका दिया है किसी ने उसे··· मगर ऐसे स्थान का क्या विश्वास, न मालूम क्या हो, क्या न हो—कोई साथ भी तो नहीं ·· अगर वह मिडवाइफ़ न बनती तो अच्छा था और वह तो स्वयं अध्यापिका बनना चहती थी; बल्कि पापा भी यही चाहते थे। मगर मामा ही किसी तरह राज़ी न हुईं···बारह साल, कितना ज़माना गुज़र गया। और मालूम होता है जैसे कल की बात हो······कितना प्यार करते थे वह इसे। नित्य स्कूल पहुँचाने जाते थे साथ। कक्षा में उसकी सीट मेज़ के पास थी···और वह अंग्रेज़ी के मास्टर साहब बहुत अच्छे आदमी थे···बेचारे, चाहे वह काम करके न ले जाये मगर कभी कुछ न कहते थे···और लड़के तो न जाने उसे क्या समझते थे। सारे स्कूल में वह अकेली ही लड़की थी ना, सब-के-सब मास्टर साहब की नज़रें बचा-बचा कर उसकी तरफ़ देखते रहते थे···अरे वह मोटा करमचन्द! भला वह भी तो उसकी तरफ़ देखता था। जैसे वह बड़ा सुन्दर समझती थी उसे · और हाँ वह अज़ीम! बड़ा भला था बेचारा! सूखा-सा, पीला, मगर आँखें बड़ी-बड़ी थीं उसकी, देखता तो वह भी रहता था उसकी तरफ़, मगर जब कभी वह उसे देख लेती थी तो वह तुरन्त लज्जित होकर नज़रें नीची कर लेता था और रूमाल निकाल कर मुँह पोंछने लगता था और उस दिन वह दिल में कितना हँसी थी। उस दिन वह संयोग से जल्दी आ गई थी। बरामदे में दूसरी ओर से वह आ रहा था। जब वह निकट आया तो उसका मुँह लाल हो गया और घबरा-घबरा कर चारों ओर देखने लगा। उसके पास पहुँच कर वह रुक गया और कुछ कहने-सा लगा। डरते-डरते अज़ीम ने उसका हाथ पकड़ लिया और फिर जल्दी से छोड़ दिया। उसे घबराया हुआ देख कर वह स्वयं कितना परेशान हो गया और उसने बहुत गिड़गिड़ा कर कहा था ··

"कहियेगा नहीं ।" वह कितने दिन इस बात को याद करके हँसती रही थी ।...कितना सीधा था सचमुच वह...वह अभी स्कूल में ही रहती तो कितना मज़ा रहता...मगर...वह समय तो अब गया...अब तो वह संसार से अलग पड़ी है । कोई बात तक करने को नहीं । किसी का पत्र भी तो नहीं आता । वह प्रतिदिन डाकिये से पूछती है कि उसका कोई पत्र तो नहीं ? मगर । नित्य उत्तर वही "नहीं" और जो आया भी तो बस वही लम्बे बादामी लिफ़ाफ़े...आन हिज़ डिस्ट्रिक्ट हैल्थ आफ़िसर के मार्गदर्शन । यों करो...कोई उसकी माने भी जो वह यों करे... निष्प्रयोजन की आफ़त...और फिर पत्र आयें कहाँ से...अगर अन्टी ही दिल्ली से पत्र भेज दिया करें तो क्या है ?...मगर वह तो वर्षों भी ख़बर नहीं लेतीं । एक बार जाना चाहिये उसे दिल्ली...अच्छा शहर है ।...क्या चौड़ी सड़कें हैं । और सिनेमा किस बहुतायत से हैं...और वह...वह कुशल से है ही...मगर वह काँय-काँय ने उसे चौंका दिया। धूप आधी दीवार तक उतर आई थी । कौआ ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रहा था और वह बिस्तर पर पैर नीचे लटकाये बैठी थी । उसे जल्दी जाना था और उसने बेकार लेटे-लेटे इतनी देर लगा दी थी और नसीबन पर अपना क्रोध उतारने लगी कि उसने चाय क्यों नहीं लाकर रखी । मगर वह समझ रही थी कि मेम साहब सो रही हैं और सचमुच उसने ख़याल किया—इससे तो वह इतनी देर सो ही लेती तो अच्छा था । प्रत्येक दशा में उसने नसीबन से जल्दी चाय लाने को कहा ।

उसने दोबारा मुँह धोया और उल्टी-सीधी चाय पीने के बाद वह कपड़े बदलने चली । ट्रंक खोलकर वह सोचने लगी कि कौनसी साड़ी पहने, सफ़ेद लाल किनारों वाली ? मगर क्या नित्य-नित्य एक ही रंग । और फिर सफ़ेद, साड़ी मैली कितनी जल्दी होती है । उसकी बहार तो बस एक दिन है । अगले दिन काम की नहीं रहती ।...... नीली साड़ी नीचे से चमक रही थी ।...इसे ही क्यों न पहने ? मगर उसे नीली साड़ी पहने देख कर तो लोग और भी बावले हो जायेंगे ..

वह जिधर से निकलती है सब उसे घूरने लगते हैं। उसे बड़ा बुरा मालूम होता है उनका यह स्वभाव···और उन ज़मींदारों को देखो, बड़े सभ्य बनते हैं ? ख़ैर यह तो जो कुछ है सो है। जब वह आगे बढ़ जाती है तो वे हँसते हैं और तरह-तरह की आवाज़ें कसते हैं · "कहो यार !" "अबे मजीद ज़रा लीजो !"···कोई खाँसने लगता है। क्या वह समझती नहीं ?···ज़रा शहर में करके देखते ऐसी बातें,···वह मज़ा चखा देती इन्हें···मगर यहाँ वह क्या करे। असमर्थ हो जाती है···इनकी ही वजह से तो उसने रंगदार साड़ियाँ छोड़ दीं और सफ़ेद पहनने लगी। मगर फिर भी नहीं मानते अब अगर आज वह नीली साड़ी पहन कर जायेगी तो न मालूम क्या-क्या करेंगे···तो फिर सफ़ेद ही पहन ले मगर रोज़-रोज़ सफ़ेद ? और क्या वह कोई उनसे डरती है ? हँसते हैं तो हँसा करें। कोई उसे खा थोड़े ही लेंगे; भला क्या बिगाड़ सकते हैं; वह उस का ? अब वह फिर रंगदार साड़ियाँ पहना करेगी···देखें वे इसका क्या बनाते हैं···हँसेंगे तो ज़रूर···मगर उससे होता ही क्या है आज वह अवश्य नीली साड़ी पहनेगी !

नीली साड़ी पहन कर उसने बाल बनाने के लिये आइना सामने रखा। निद्रा पूरी न होने से आँखें लाल और कुछ सूजी हुई-सी थीं। वह हाथ में शीशा लेकर आँखों को ध्यान से देखने लगी। मगर यह उसका रंग क्यों खराब होता चला जा रहा था। और खाल भी खुरदरी हो चली थी। जब वह लड़की थी तो उसके चेहरे पर कितनी कान्ति थी। रंग साँवला था तो क्या, चमकदार तो था···उसकी अन्टी हमेशा मामा से कहा करती थी—तुम्हें बेटी अच्छी मिली है···मगर अब ।

उसने आइना रख दिया और अपने शरीर को ऊपर से नीचे तक ऐसी कामना से देखने लगी जैसे मोर अपने पैरों को। उसके बाजुओं का माँस लटक आया है और ठोढ़ी भी मोटी हो गई है। और हाथ अब कितने कठोर हैं। बाल भी सूखे-साखे और हल्के रह गये हैं। और तेज़ी तो उसमें बिलकुल नहीं रही है। पहले वह कितना-कितना दौड़ती-

भागती थी और फिर भी न थकती थी, मगर अब तो थोड़ी ही देर में उसकी कमर टूटने लगती है ।

उसने एक लम्बी-सी अंगड़ाई और फिर एक गहरा साँस लिया । शुष्क चेहरे और पिलपिले बाजुओं ने नीली साड़ी का रंग उड़ा दिया था । उसने बाल ऐसी बेदिली से बनाये कि बहुत से तो इधर-उधर उड़ते रह गये । बाल बन चुके थे; मगर वह बराबर शीशे को तके जा रही थी और उसका मस्तिष्क सिकुड़ कर आँखों के पपोटों में आ गया था जिनमें एक ही जगह शनैः-शनैः मिर्चें-सी लगने लगी थीं ।

जब उसने आइना रखा तो उसे मेज़ के कोने पर दीवार के पास बायबिल रखी नज़र आई । यह बचपन में वर्षगाँठ के अवसर पर उसके पापा ने उसे दी थी । बहुत दिनों से उसने इसे खोला तक न था । उस पर धूल के पर्त जम गये थे । इस पुस्तक ने उसे फिर पापा की याद दिला दी और वह उसे उठाने पर विवश हो गई । पहले ही पृष्ठ पर उसका नाम लिखा था । किन्तु अब उसकी स्याही बहुत फीकी पड़ चुकी थी । यह उसने पाँचवीं कक्षा में लिखा था । यह देखकर उसे हँसी आई कि वह उस समय कैसे टेढ़े-मेढे अक्षर बनाया करती थी । उसे यह भी स्मरण आया कि उस अतीत काल में उसके पास हरा क़लम था । उसका विचार हुआ कि अब की वह शहर जायेगी तो एक हरा क़लम ज़रूर ख़रीदेगी । मगर उसे खयाल आया कि आखिर वह क़लम लेकर करेगी ही क्या ? अब उसे कौन-सा बड़ा लिखना-पढ़ना रहता है । उसके पापा उसे बायबिल पढ़ने की कितनी सीख देते थे । उसे अपनी बेपरवाही पर शर्म-सी महसूस हुई और वह बायबिल के पृष्ठ उलटने लगी । ···उत्पत्ति······नि ···पृष्ठ शीघ्रता से उलटे जाने लगे ··· इस्तिश्ना······रूत ······ यरमिया ······जक़ूक मती······ लूका कहाँ पढ़े ?······आदम ···नूह ····तूफ़ान··· इब्राहीम कश्ती·· सलीब···मसीह···गिर्जा का घंटा·· सब मिल कर गिर्जा जाया करते थे हँसते-मज़ाक करते । अन्त को वह निर्णय न कर सकी कि कौन-

सी जगह से पढ़े । उसे जल्दी जाना था । इतना समय भी नहीं था । लेकिन उसने संकल्प कर लिया कि वह अब प्रतिदिन प्रातःकाल बायबिल पढ़ा करेगी । नहीं तो कम-से-कम रविवार को तो अवश्य……लेकिन दुआ तो माँग ही लेनी चाहिये ……बहुत ही बुरी बात है, मामा कभी बिना प्रार्थना किये नहीं सोने देती थीं……और फिर उसमें वक्त भी कुछ नहीं लगता और लगे भी तो क्या है, दुनिया के धन्धे तो होते ही रहते हैं।

उसने मस्तिष्क को एकाग्र करना चाहा और नेत्र बन्द कर लिये। नेत्र बन्द करते ही पहले तो उसकी मामा उस की आँखों में घुस आई और फिर पापा ; और उनके पीछे-पीछे गिरजा की सड़क, घंटा और सब मिलकर गिरजा जाया करते थे, हँसते, मज़ाक करते । उसने आँखें खोल कर सिर को इस प्रकार झटके दिये गोया उन सब को अपनी आँखों में से झाड़ रही है…… अन्त में मस्तिष्क बिलकुल ख़ाली हो गया और चुपचाप. केवल कानों और सर में दिल की धड़कने आ रही थीं। उसने फिर से आँखें बन्द कर लीं । दोनों हाथ जोड़ लिये और दुआ को दोहराती चली गई । "ऐ मेरे बाप तू जो आसमान पर है, तेरा नाम पाक माना जाये तेरी बादशाही आये, तेरी इच्छा जैसे आकाश पर पूरी होती है वैसे ही पृथ्वी पर हो । हमारा नित्य का भोजन आज हमें दे और हमारे अपराधों को क्षमा कर, जैसे हम भी अपने अपराधों को क्षमा करते हैं क्योंकि कुदरत जलाल तेरा ही हो, आमीन !"

आँखें खोलने पर उसने कुछ संतोष-सा-अनुभव किया और मुसकराने की कोशिश करने लगी । उसने फिर शीशे में झाँका और चाहा कि किसी विशेष वस्तु के लिये दुआ माँगे; लेकिन क्या वस्तु ? कोई !

…उसकी बदली शहर में हो जाये…… मगर वहाँ उसे फिर विलमैन का सामना करना पड़ेगा । उससे तो यह कस्बा ही बेहतर है ……फिर और क्या ? …… वह एक कहानी कि एक परी ने एक

आदमी से तीन अभिलाषायें पूरी करने का वचन दिया था……फिर आख़िर क्या ?……

उसने बहुत बाज़ू मले, मगर कोई बात स्मरण न आई। उसे देर हो रही थी, इसलिये उसने अपनी प्रार्थनाओं और अभिलाषाओं को छोड़ दिया और छतरी उठा कर चल पड़ी।

सड़क पर पहुँच कर उसे केवल एक शीघ्र पहुँचने की चिन्ता लगी थी। प्रातःकाल की इस तमाम काहिली और सुस्ती के पश्चात् उसे शरीर के भागों को गति देने में आनन्द आ रहा था। सूर्य की हल्की-सी गर्मी और चलने से उसके रक्त की गति तीव्र हो गई थी। और वह सड़क की नाली, रेत-कंकरों, सब से बे-परवाह अपना रास्ता तय करने में लगी हुई थी। अगर उसे अपनी चाल में भी कुछ धीमापन मालूम होता तो वह और पैर बढ़ाने का प्रयास करती। सड़क पर खेलने वाले लड़के अभी तक न निकले थे। इसलिए उसे अपनी आँख-नाक की रक्षा की आवश्यकता न थी। जब वह दीवारों की छाँव में से चलती तो उसके पैर और भी तेज़ उठने लगते थे।

वह जल्दी ही बाज़ार में पहुँच गई। शेख़ सफ़दरअली का मकान अब थोड़ी ही दूर रह गया था और संतोष-सा हो गया था कि अधिक देर नहीं हुई। वह चली जा रही थी कि उसकी दृष्टि एक दुकानदार पर पड़ी। वह अपने सामने वाले को आँख से संकेत कर रहा था। क्या वह इसे देख रहा था ? संभव है वे पहले से किसी बात पर हँस रहे हों और इसे देर भी हो गई थी……वह आगे बढ़ी ही थी कि आवाज़ आई—"आज तो आसमान नीला है भई… बड़े दिन में ऐसा हुआ है आज… ……" उसने चाहा पलट कर छतरी रसीद करे उस असभ्य के…… चाहे कुछ हो आज वह खड़ी हो जाये और स्पष्ट कह दे कि वह उन लोगों की बातें अच्छी तरह समझती है ; और अब वह अधिक सहन नहीं कर सकती………आख़िर कहाँ तक ?………पैर मन-मन-भर के हो गये थे और टाँगें काँप रही थीं जिससे वह कई बार

चलते-चलते डगमगा गई·········मगर उन आँखों ने जो अब हर तरफ़ से उसकी तरफ़ देख रही थीं, उसे रुकने न दिया। वह अपनी साड़ी में कुछ सिकुड़-सी गई। उसने पल्ला अच्छी तरह छाती पर खींच लिया और सिर झुका कर कदमों को सड़क पर से उखाड़ने लगी·········जब वह शेख़ सफ़दरअली के मकान पर पहुँची तो वह ड्योढ़ी में कुछ लोगों के साथ बैठे हुक्का पी रहे थे। इसे देखते ही वह खड़े हो गये और ऐसे उलाहना-भरे स्वर में जैसे उसने कोई बहुत बढ़िया अवसर हाथ से निकल जाने दिया था; जिस पर शेख़जी को उससे सहानुभूति थी, बोले—

"अख़्ख़ाह मेम साहब ! बड़ी ही देर कर दी तुम ने तो !"

"जी·········हाँ··· ···वह ज़रा देर हो गई।" कहती हुई वह अन्त:पुर की ओर बढ़ी। जब द्वार पर पहुँची तो उसने देखा कि कस्बे की पुरानी दाई बायें हाथ पर कपड़े उठाये और दाहिने हाथ में लोटा हिलाती आँगन से जा रही है, यह कहती हुई—"जबरा देख तो······ अभी तक न निकली घरवे से हरामज़ादी !"

दो बैल

आदिल रशीद

रहीम को मैं उस समय से जानता हूँ, जब से किसी को जानने और समझने के योग्य मैं हो चुका था और मैं किसी के प्रति खूब अच्छी तरह सोच-विचार कर सकता था ।

मैं ज़िन्दगी में पहली बार शहर से गाँव आया था। उस गाँव में जहाँ मेरी दूसरी ननिहाल थी । स्टेशन पर जब हमारी गाड़ी पहुँची और हम लोग डिब्बे से बाहर निकले तो मैंने देखा एक खूब गोरे-चिट्टे और गठे हुए शरीर वाले जवान आदमी ने डिब्बे के अन्दर घुस कर हमारा सामान बाहर निकालना शुरू किया और आन-की-आन में उसने सारा सामान जो कि बहुत ज़्यादा था, डिब्बे से बाहर निकाल कर प्लेटफ़ार्म पर एकत्र कर दिया । और यह सब कुछ उसने इतनी फुरती के साथ किया कि मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ । अधिक आश्चर्य का कारण यह था कि जिस स्टेशन पर हम लोग उतरे थे, वह देहात का एक मामूली स्टेशन था और गाड़ी वहाँ तीन मिनट से अधिक नहीं रुकती थी । बल्कि हमें डर भी था कि कहीं ऐसा न हो कि हमारा सामान इतने कम समय में न उतर सके; मगर हुआ यह कि उस अकेले आदमी ने सारा सामान उतार लिया और गाड़ी उसके बाद छूटी ।

पिताजी ने कहा भी—"भई, दो-एक कुली बुला लो ताकि सामान आसानी से बाहर पहुँचा दिया जाय ।"

"यहाँ कुली कहाँ ?" मेरे नये मामूजान साहब ने कहा । और उस आदमी ने एक-एक करके सामान अपने सिर पर, कन्धों पर और भुजाओं

पर उठाना शुरू कर दिया। हम लोग प्लेटफ़ार्म के बाहर आ गये और उसके थोड़ी देर बाद सारा सामान भी उसी आदमी के ज़रिये बाहर आ गया।

बाहर एक बैलगाड़ी खड़ी थी। उसी व्यक्ति ने सारा सामान उठा-उठा कर बैलगाड़ी पर रख दिया। पिताजी रिश्तेदारों से हँस-हँस कर बातें कर रहे थे और मैं आश्चर्यजनक और सहानुभूतिपूर्वक उस आदमी को और उसके परिश्रम को ग़ौर से देख रहा था।

गाड़ी पर सामान रखे जाने के बाद जब निरीक्षण किया गया तो पता चला कि गाड़ी में और कुछ रखने की बिलकुल जगह नहीं है। और अभी एक बड़ा ट्रंक और दो बोरे जो कि सामान से भरे थे, बाहर पड़े थे। गाड़ी पर हम लोग बैठ गए और उसी व्यक्ति ने बिना किसी के कहे-सुने वह ट्रंक और दोनों बोरे अपने सिर पर रखवा लिए और अपने सिर के इस ज़बरदस्त बोझ को अपनी लाठी के सहारे सँभाल हुए तेज़ी के साथ रवाना हो गया।

मुझे आश्चर्य हुआ और आश्चर्य से अधिक तकलीफ़ हुई कि यह आदमी इनसान है या जानवर ? भला किस प्रकार यह ग़रीब इस बोझे को लेकर इतनी दूर चल सकेगा ? मैंने सुना था कि हमारा गाँव वहाँ से पूरे साढ़े तीन मील की दूरी पर है। और यहाँ से पूरे साढ़े तीन मील इस बेचारे इन्सान को इतना भारी बोझा अपने सिर पर लाद कर ले जाना था।

गाड़ी रवाना हो गई। और लाइन पार करने के बाद जबकि हमारी गाड़ी एक कच्ची सड़क पर चल रही थी, मैंने देखा कि वह आदमी भारी सामान से लदा हुआ, लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ दूर खेतों की पगडंडियों पर से गुज़र रहा है।

और यह देख कर जैसे मेरे दिल पर किसी ने ज़ोर का घूँसा मारा मैं बेचैन हो गया और अपने पिताजी से मैंने पूछा—"मियाँ, यह आदमी कौन है ?"

"तुम्हारे मामूजान का पुराना नौकर है। इसे बचपन से तुम्हारे नानाजान ने पाला था। यह बिलकुल घर का-सा आदमी है।"

"खूब! बिलकुल घर का-सा आदमी है," मैंने मन-ही-मन में सोचा। "क्या खूब इज़्ज़त है इस घर के आदमी की अपने इस घर में......"

"इसका नाम क्या है?"

"रहीम।"

"इतना बड़ा बोझा उठा कर घर तक यह कैसे पहुँच जायगा?" बड़ी तकलीफ़ से मैंने यह प्रश्न किया और उत्तर में मेरे मामूजान ने कहा—

"यह इससे भी बड़ा बोझा उठा सकता है।" वह मुसकराये, "तुम क्या जानो मियाँ, तुम अभी बच्चे हो। इसे तुम्हारे नानाजान ने बचपन से पाला है।"

मैं मन-ही-मन कुढ़ने लगा—खूब! बचपन से पाला है!! बचपन से क्या इसलिए पाला है कि जब वह पल जाय तो उसे जानवर समझ कर इतने बड़े बोझे के तले दबा दिया जाय। उन्होंने एक आदमी के बच्चे को पाला है, गधे के बच्चे को तो नहीं!! मगर मैं चुप रहा। सिवाय इसके और कर भी क्या सकता था भला!

और फिर जब हमारी गाड़ी गाँव पहुँच गई तो मैंने देखा कि रहीम अपने दोनों हाथों में मिट्टी के दो बहुत बड़े-बड़े घड़े, जो कि पानी से मुँह तक भरे हुए थे, लटकाये घर में दाख़िल हो रहा है। फिर वह उन घड़ों को अन्दर रख कर आया और गाड़ी पर से सामान उतारने लगा।

और जब गाड़ी पर से आख़िरी सामान, बड़ा-सा ट्रंक उठा कर लाया और उसे आँगन में रखकर अपने माथे का पसीना पोंछने लगा तो मुझसे न रहा गया और मैं उसके निकट जाकर पूछने लगा—

"रहीम मामू! तुम अकेले इतना परिश्रम क्यों करते हो? क्या तुम आदमी नहीं हो?" और उत्तर में रहीम के मुरझाये चेहरे पर एक फीकी

हँसी, जिसे मैं आज भी मुसकान कहीं कह सकता हूँ, फैल गई। और वह अपनी ज़बान से कोई जवाब न देकर बाहर चला गया।

× × ×

बाहर जाकर मैंने देखा कि रहीम बैलों को भूसा और खली दे रहा है। तभी नाना की गरजदार आवाज़ अन्दर से सुनाई दी—"रहीमवा ! अबे ओ रहीमवा !!

और वह जल्दी-जल्दी भैंस को खूँटे से खोलकर अन्दर अहाते में बाँधते हुए बोला—"क्या है ?"

"अरे ससुर !"—अन्दर से आवाज आई। "क्या-क्या कर रहा है ? इधर आ।"

और वह अन्दर चला गया। नाना साहब ने उसे डाँट कर कहा—"अन्धा है क्या. देखता नहीं कि घर में मेहमान आए हैं। बिजलीपुर से जाकर गोश्त ले आ। बाज़ार का समय अभी बाकी है। जल्दी कर नहीं तो गोश्त न मिलेगा !! "

"यह बिजलीपुर यहाँ से कितनी दूर है ?" मैंने पूछा।

"यहाँ से दो मील दूर है।" मुझे बताया गया।

और मेरा सिर चकरा गया। या खुदा ! ये लोग इसे इनसान समझते हैं या जिन, या भूत ? जानवर तो इसलिए नहीं समझते कि जानवरों से इतना अधिक काम नहीं हो सकता। इसलिए कि मैं बाहर देखकर आया था कि वे बैल जो स्टेशन से घर तक गाड़ी खींच कर लाए थे, इत-मीनान से अपने थान पर बँधे हुए चारा खा रहे थे और रहीम बेचारा बिजलीपुर गोश्त लाने के लिए रवाना हो गया था।

× × ×

सुबह अन्धेरे ही खट-खट की आवाज़ से मेरी आँख खुल गई। मैंने बाहर जाकर देखा, दालान के एक कोने में रहीम लालटेन की रोशनी में जानवरों के लिए चारा काट रहा था। इस समय सुबह के साढ़े चार बजे थे। मुझे याद आया कि रात को बारह बजे के करीब जब मेरी

आँख न जाने कैसे खुल गयी थी ; मैंने देखा था कि रहीम लालटेन जलाये हुए चमड़े के बड़े से 'पुर' (खेतों में पानी देने का बड़ा-सा डोल) को सीं रहा था।

मैं देर तक जागता रहा और रहीम मेरे जागने तक अपने उसी सिलाई के काम में लगा रहा। आख़िर थक कर मेरी आँख लग गई और न जाने फिर और कितनी रात गए तक वह ग़रीब उसी तरह उस काम में लगा रहा होगा ? अब वह चारा काट रहा है—और इस समय सुबह के साढ़े चार बजे हैं। सारा घर रात को बारह बजे भी सो रहा था और इस वक़्त भी सो रहा है !

मुझे बेहद दुःख हुआ और मैंने रहीम से पूछा--"रहीम मामू ! तुम थकते नहीं हो ? इतनी सुबह उठ बैठे।"

और वह मेरी ओर देख कर बोला—"तुम सो रहो जाकर मियाँ, अभी से क्यों उठ बैठे ?"

यह मेरी बात का जवाब था और फिर वह अपने काम में मग्न हो गया। उसका चेहरा बिलकुल सपाट था। जैसे सारी भावनाएँ एक साथ उसके हृदय में दफ़न हो कर रह गईं।

पशुओं के लिए चारा काट चुकने के बाद वह भैंस दुहने बैठ गया। और फिर घड़ा और रस्सी लेकर कंधे पर डाल कर वह कुएँ पर पानी भरने चला गया।

सारा घर नाशता कर चुका था; मगर रहीम को अभी तक कामों से छुट्टी नहीं मिली थी कि नानासाहब ने उसे हुक्म दिया—"अबे, ओ रहीमवा, ज़रा एक मुर्गी तो ज़बह कर दे।"

और वह चुपचाप आज्ञा का पालन करने बैठ गया। रहीम मुर्गी ज़बह करके उसे साफ़ कर रहा था और मैं उसके समीप बैठा ग़ौर से उसे देख रहा था। मैं उसके चेहरे पर उसके दिली तास्सुरात का अन्दाज़ा लगाना चाहता था। उसके एहसासात को पढ़ना चाहता था। मगर रंज तो मुझे इस बात पर हुआ कि रहीम के चेहरे पर एक भावना भी न

देख सका। उसका चेहरा किसी प्रकार की भावना से वंचित था।

और फिर उसे भी नाश्ता दिया गया। रात की बासी अरहर की दाल, जौ की एक अध-जली रोटी और बस ! न उसने चाय माँगी, और न किसी ने उसे चाय दी।

और इस नाश्ते के बाद वह खलियान जाने लगा। जाते-जाते मामूजान ने उसे पुकारा, "देख रहीमवा, शाम को शम्साबाद की बाज़ार जाना न भूल जाना !!"

और इस आवाज़ पर वह रुक गया। इकरार में उसने अपनी गर्दन को हलकी-सी जुंबिश दी और सिर को झुका कर चला गया और मैं बहुत देर तक रहीम के बारे में सोचता रहा।

× × ×

रात को बाहर चौपाल में गाँव के बहुत से लोग जमा थे। औरत, मर्द, बूढ़े, जवान और बच्चे। वे सब ग्रामोफ़ोन सुनने आये थे। पिताजी के ग्रामोफ़ोन की सारे गाँव में धूम थी। रहीम भीतर से चिलम भर कर लाया तो नाना ने उसकी ओर देख कहा—"अबे ओ, अभी तक तू खलियान नहीं गया ?"

और जवाब में वह अपने कंधे पर अंगोछा डाल कर खलिहान जाने को तैयार हो गया। तब मैंने बेचैन होकर उससे पूछा—"रहीम मामू, तुम ग्रामोफ़ोन नहीं सुनोगे ?

"खलियान अकेला है" वह बोला—"अगर कोई खलियान चुरा ले तो ? तुम मियाँ (पिताजी) से कहना आवाज़ ज़रा-सी तेज़ कर दें मैं खलियान से सुन लूंगा। पछवा हवा है; आवाज़ ज़रूर पहुँच जायेगी !!"

और रहीम मामू का यह जवाब सुन कर मुझे उस पर बड़ा तरस आया। बेचारा रहीम मामू !! वह ग्रामोफ़ोन सुनने के लिये पछवा हवा का सहारा ढूँढ़ रहा है। अगर पछवा हवा न चले तो ? पुरवा हवा चलने लगे तो फ़िर बजाय इसके कि रहीम मामू ग्रामोफ़ोन सुने ; मैं

उसके दिल की आवाज़ यहाँ अकेला सुनता रहूँगा। रहीम मामू की इस बेचारगी पर मेरा दिल कुढ़ गया। मगर मेरे दिल की कुढ़न का अंदाज़ा किसी को इसलिए न हो सका कि मास्टर राहत क़व्वाल गला फाड़ कर चिल्ला रहा था—

'सुन ऐ नसीमे जांफ़िज़ा, जाकर सुए यसरब ज़रा,
बाबे हरीम खास के परदों से ये कहना ज़रा।
लीजिये खबर या मुस्तफ़ा ये वक्त है इमदाद का॥'

मैं वहाँ से उठ कर अन्दर आ गया और अपने बिस्तर पर लेट कर बहुत देर तक रहीम मामू के बारे में सोचता रहा। बाहर ग्रामोफ़ोन उसी तरह बहुत रात गये तक बजता रहा और मुझे यह न मालूम हो सका कि अब तक पछवा हवा चलती है या पुरवा हवा चलने लगी है।

× × ×

हर साल गरमियों की छुट्टियों में एक महीने के लिए हम लोग गाँव आते और मैं अपने रहीम मामू को उसी तरह, बिलकुल उसी एक अंदाज में अपने काम-काज में मसरूफ़ देखता। और अब तो मैं अकसर सोचा करता कि आखिर रहीम मामू की शादी कब होगी ? ये घर वाले रहीम मामू की शादी की बातचीत आखिर क्यों नहीं करते ?

गाँव की बहुत सी कुँवारियाँ गाँव के अंदर, गाँव के बाहर दूर देश में जाकर सोहागन बन गई थीं और बहुत सी दूर देश की कुँवारियाँ इस गाँव में आकर सोहागनें कहलाने लगी थीं। वे नव-जवान जो कल तक कुँवारे थे, अब कई-कई बच्चों के बाप बन चुके थे। मगर रहीम मामू अभी तक ज्यों-के-त्यों थे। उस बेचारे की शादी तो एक तरफ़, किसी को इस बात की भी फ़िक्र नहीं थी कि आखिर रहीम भी इनसान है और उसे भी शादी की ज़रूरत लाहक़ हो सकती है। खुद हमारे ननिहाल में देखते-देखते कई लड़कियाँ ब्याही गईं और अब उसी आँगन में उनके बच्चे रेंगते फिर रहे थे। मगर रहीम की ज़िन्दगी में कोई परिवर्तन न हुआ। वह अब भी उसी तरह बैल के समान अपने काम में दिन-

रात लगा रहता था। सावन-भादों की अनगिणत रातें आईं और गुज़र गईं ; मगर रहीम की अन्धेरी रातों में जुगनू न चमके। उसने कभी अपने दिल के करीब किसी दूसरे दिल की धड़कन न महसूस की। रात की तनहाइयों में कभी एक बार भी चूड़ियों के छन-छनाने की सुरीली आवाज़ उसने न सुनी। वह उसी तरह गायें और भैंसें दुहता रहा। वह इसी प्रकार खलियानों की रखवाली करता रहा। सुबह के चार बजे से उठ कर वह उसी प्रकार चारा काटता रहा। वह शम्साबाद की बाज़ार जाता रहा। वह बिजलीपुर से उसी तरह गोश्त लाता रहा। उसके जीवन के लिए तयशुदा और बँधे-बँधे-से प्रोग्राम उसी तरह चलते रहे। वह रोज़ उसी भाँति बासी दाल को रोटी पर रख कर नाश्ता करता रहा। और अपने पालने वालों की नेकियाँ, झिड़कियाँ और डाँट-फटकार सुनता रहा।

उसकी गोद में खेलने वाले बच्चे जवान हो गए और उसकी उँगली पकड़ कर और उसके कंधों पर बैठकर मेला जाने वाली लड़कियाँ जवान होकर उससे हिसाब करने लगीं। उसके सामने घूँघट निकालने लगीं और देखते-ही-देखते वे सब-की-सब कई-कई बच्चों की माएँ बन गईं।

एक बार मेरे उकसाने पर और पिताजी की कोशिश से उसके घर वालों ने उसके ब्याह की बातचीत कुछ यों ही शुरू-सी की। मेरी माँ ने एक लड़की को बचपन से पाला था और अब बचपन की यह लड़की जवान हो गई थी। मेरी माँ का स्वर्गवास हो चुका था इस कारण पिता-जी ने उस लड़की की बातचीत रहीम से तय की। और मैंने देखा कि इस बातचीत से रहीम के चेहरे पर एक अनजान खुशी नाच उठी। वह इस शादी से बहुत प्रसन्न था। यद्यपि सलीमन केवल एक औरत थी। उसमें दूसरे कोई आकर्षण नहीं थे; बल्कि वह कानी थी और चेहरे पर माता के गहरे दाग़ भी थे। मगर रहीम बेहद खुश था। और हर हरकत से यह खुशी छलकी पड़ रही थी और मैं उसकी खुशी पर खुश था। आखिर रहीम मामू के जीवन की वह सबसे बड़ी खुशी पूरी होने वाली

थी, जो हर मनुष्य का पैदाइशी हक़ है ।

मगर न जाने क्या हुआ कि आप-ही-आप यह रिश्ता अधूरा ही रह गया । सलीमन के कुछ दूर के सम्बन्धी आकर उसे हमारे यहाँ से ले गये और बेचारे रहीम मामू के सारे सुहाने सपने एकदम टूट गए और वह मुरझा कर रह गया । मगर न जाने क्यों मेरे नाना साहब और मामू को इस रिश्ते के टूट जाने से हार्दिक खुशी हुई ।

और उस रात विशेष रूप से मैंने जाग कर देखा कि रहीम मामू पल-भर के लिए भी न सो सका । वह रात-भर जागता रहा और सुबह के चार बजे तक अपनी खुर्री खाट पर करवटें बदलता रहा । और फिर उठकर दालान में आया, और मैंने सुना कि थोड़ी देर बाद चारा काटने की खट-खट की आवाज़ फिर शुरू हो गई । रहीम मामू चारा काट रहा था और सारी दुनिया सो रही थी । और उसी सुबह को घर पली हुई भैंस की जवान पड़िया ने अपना पहला बच्चा जना था । जिसकी ज़चगी के फ़रायज़ भी गरीब रहीम को सर-अंजाम देने पड़े ।

और फिर अगले साल जब मैं शहर से गाँव आया तो मैंने देखा कि रहीम मामू का चेहरा जो सुर्खोसफ़ेद था, वह पीला पड़ गया था; और आँखें जो कि बड़ी और चमकीली थीं, कदरे अंदर धँस गई थीं । और वह पहले से ज्यादा चुप और गम्भीर हो गया था और इस बार जो मैंने एक विशेष बात नोट की वह यह थी कि रहीम मामू औरत की परछाईं से दूर भागने लगा था । वह औरत से बचकर चलता, वह पगडंडी पर दूर से आती हुई किसी औरत को देख कर रास्ता काट जाता और अकारण ही अपने रास्ते को लम्बा कर लेता । वह हर औरत से कतराता । यहाँ तक कि अपने घर की औरतों से भी परहेज़ करने लगा था । वह भूल से भी कभी रसोईघर न जाता । इसलिए कि वहाँ मेरी सौतेली माँ, मौसियाँ, मामियाँ और नानीजी बैठी रहती थीं ।

× × ×

और फिर पूरे सोलह वर्ष के बाद आज मैं बम्बई शहर से देहात

वापस लौटा हूँ। मैंने अपने रहीम मामू को बिलकुल उसी हालत में देखा है। मेरे सिर के बाल क़दरे सफ़ेद हो गये हैं मगर रहीम मामू का एक भी बाल सफ़ेद नहीं हुआ है और वह उसी तरह अपने काम में लगा हुआ है, जैसे अब से सोलह साल पहले वह अपने काम में लगा रहता था।

"रहीम मामू ! यह मेरी बीवी है—तुम्हारी बहू।"

मैंने रहीम मामू से अपनी बीवी का परिचय कराया और उसके सारे शरीर में एक झुरझुरी-सी आ गई। वह निगाहें नीची किए हुए पाँव के अँगूठे से ज़मीन कुरेदता रहा।

"तसलीम !" मेरी पत्नी ने नम्रतापूर्वक अपने ममियाससुर को सलाम किया और रहीम मामू ने बेचारगी और बेबसी के आलम में उसी तरह निगाहें नीची किए जवाब दिया—"जीती रहो।"

मैंने देखा कि रहीम मामू के होंठ फड़-फड़ा रहे थे। और उसकी आँखों में आँसू के कतरे लरज़ रहे थे। वह घबरा कर बाहर चला गया।

और फिर दो-चार दिन देहात में रहने के बाद जब मैं अपनी बीवी-बच्चों सहित बैलगाड़ी पर स्टेशन आ रहा था, रहीम मामू के सिर पर उसी तरह एक ट्रंक और उस पर एक बोरा लदा हुआ था। बोरे में देहात का तोहफ़ा शकरकंद भरी हुई थीं, गाजरें थीं और होला था बेचारे रहीम मामू इतना बोझा लेकर चल रहे हैं। मेरी बीवी को बड़ा दुःख हुआ और वह बेहद रंज के साथ बोली—"घर पर भी मैंने देखा है ये रात-दिन बैल की तरह काम में सुबह से शाम तक और रात गए तक लगे रहते हैं।"

"यह उनकी आदत है।" मेरे मुँह से निकला। "बेचारे रहीम मामू !!"

और स्टेशन पर पहुँच कर जब की सामान सेकंड क्लास के डिब्बे में रखा जा चुका था, मैंने डरते-डरते रहीम मामू कि जेब में दस-दस के पाँच नोट रख दिये और मैं पूरी शिद्दत के साथ रहीम मामू से बग़ल-

गीर हो गया। "रहीम मामू !!" मेरी आवाज़ गले में रुँध कर रह गई—"तुम अपनी शादी क्यों नहीं कर लेते ?"

और जवाब में रहीम मामू की आँखों में आँसू छलक आये। वह गाड़ी में जुते हुए बैल को देख रहे थे, जो बाहर खड़ा जुगाली कर रहा था।

और फिर जब गार्ड ने हरी झंडी दिखाकर सीटी बजाई तो उन्होंने जल्दी से दो दस-दस के नोट मेरी बेटी नाहीद को देते हुए कहा—"बिटिया, यह मेरी तरफ़ से अपनी अम्मी को मुँह दिखाई दे देना।"

"यह क्या कर रहे हैं आप रहीम मामू ?" मेरे मुँह से निकला और वह अपने अँगोछे को अपनी आँखों पर रखते हुए बोले —

"यह मेरी खुशी है।"

गाड़ी की स्पीड तेज हो गई और मैं सेकंड-क्लास के डिब्बे के दरवाजे पर खड़ा हुआ दूर तक यह देखता रहा कि रहीम मामू प्लेटफ़ार्म से बाहर निकल कर अपनी गाड़ी के बैलों की गर्दन में अपने हाथ डाले खड़े हैं।

मैंने बेचैन होकर सेकंड-क्लास का दरवाज़ा बन्द कर लिया और आँखों के सामने उनका चेहरा तैर गया। मेरी बन्द आँखों के समीप रहीम मामू अपने बैलों की गर्दन में हाथ डाले खड़े थे।

तिरंग चिड़िया

कृष्ण चन्द्र

उस समय मेरी आयु छः साल की थी। पतझड़ के आरम्भ की ऋतु थी; लम्बी-पीली घास सूर्य की किरणों से आग की लपट की भाँति दिखाई देती थी। नाशपातियों में पका रस उतरने लगा और पृथ्वी के बिछौने पर जेले के बड़े-बड़े नीले फूल जो दूर से देखने में ग्रामोफोन बाजे का भोंपू मालूम होते थे, चारों तरफ़ फैले हुए थे। मैं और कुन्तल और उसकी सहेली जरिया घास में टिड्डे पकड़ रहे थे। बड़े-बड़े लम्बी-लम्बी टाँगों वाले टिड्डे, जो दूर से बिलकुल घास के लच्छों की तरह दिखाई देते हैं, लेकिन जब उनकी टाँग पकड़ ली जाय तो फिर किस तरह फुर्र करके तड़पते हैं; अजीब तमाशा होता है। और कासनी रंग की तितलियाँ जो घास की तुरियों पर कलगी की तरह जमी रहती हैं और जब उन्हें पकड़ कर टोपी के नीचे बन्द कर लिया जाय तो हाथों में उनका कासनी रंग लगा रह जाता है और उँगली की पोर पर उसी तरह के आकर्षक चित्र बन जाते हैं।

मुझे याद है; हम तीनों घुटनों के बल चल रहे थे और घास की शुष्क, ताज़ी, भीनी सुगन्ध चारों ओर फैली हुई थी। यद्यपि घास की सर-सराहट पर्याप्त ऊँची थी, लेकिन हम अपनी समझ से अत्यन्त मौन, साँस रोके हुए चल रहे थे, ताकि टिड्डों को हमारे आने का पता न लग सके; और न ही वे हमारी आवाज़ सुनकर भाग जायें। जरिया की आँखें शिकार की आशा में चमक रही थीं। उसके पतले होंठ अन्दर भिंचे हुए थे और गाल फूले हुए थे। कुन्तल के बालों में घास के अन-

गिनती लच्छे लटके हुए थे, जैसे किसी चिड़िया ने उसके बालों में नया-नया घोंसला बनाना चाहा हो। और फिर अचानक कुन्तल ने एक ऊँची कानाफूसी में कहा—"शिश् !"

मैंने एक उँगली अपने मुँह पर रखकर जरिया से कहा—"शिश् ।"

जरिया ने हम दोनों की तरफ़ देखकर कहा—"शिश् !"

फिर हम तीनों और अधिक उकड़ूँ होकर चलने लगे कि कहीं वह गुलाबी रंग की तितली देख न ले जो हम से कुछ गज़ की दूरी पर थी।

'सहसा' 'टीहों-टीहों' करती हुई एक चिड़िया हमारे सामने से उड़ गई। कुछ क्षणों के लिए उसने खुले वातावरण में पर फैलाये। गहरा लाल, पीला और भूरा तीन रंगों का सुन्दर इन्द्र-धनुष आँखों के आगे खिच गया और फिर अदृश्य हो गया। चिड़िया ने पर समेट लिए और बातावरण में डूब गई। फिर वही इन्द्र-धनुष निकला। लाल, पीला और भूरा ; फिर उसने पर समेट लिए। हर बार वह इन्द्र-धनुष छोटा होता गया और अन्त में दूर एक झुण्ड में अदृश्य हो गया।

"यह तिरंग चिड़िया थी," कुन्तल ने हमें समझाते हुए कहा। वह आयु में मुझसे एक साल बड़ी थी। "तुम लोगों ने कोलाहल करके उसे डराया, नहीं तो हम उसे पकड़ लेते और एक खूबसूरत पिंजरे में बन्द करके रखते।" "यह तिरंग चिड़िया थी," मैंने जरिया से घुड़की के भाव में कहा, "तुमने उसे शोर मचा कर उड़ा दिया।" 'टीहों-टीहों' जरिया ने अत्यन्त नटखट और चंचल स्वर में तिरंग चिड़िया का अनुकरण करते हुए कहा। मैंने घास के लच्छे नोच कर उसके बालों में डाल दिए।

मैं वकालत की परीक्षा पास करके और टाइप सीख कर एक अंग्रेजी फ़र्म के दफ़्तर में सुपरिंटेण्डेण्ट बन गया। साढ़े-तीन सौ रुपये मासिक वेतन मिलता था और अभी शादी न हुई थी; इसलिए अकेला मैं जहाँ चाहता था; वहाँ रहता था। बहुधा समय को सिनेमाघर में व्यतीत करता था। सिगरेट, शराब इत्यादि सब ही का थोड़ा-थोड़ा शौक था। पान में अगर कहीं से थोड़ी सी कोकीन मिल जाती तो असीम

आनन्द प्राप्त होता था। इन तमाम दुर्घटनाओं मे जो सूर्य अस्त होने के पश्चात् होती, निहालसिंह मेरा विशेष परामर्शदाता था जो हमारे दफ्तर मे सेकेन्ड क्लर्क था। वह ठोढ़ी से नीचे दाढ़ी मुंडाता था; इस तरह कि भेद खुलने न पाये। भेद न खुलने मे जो मज़ा है वह भेद खुलने में नही।

एक दिन निहालसिंह ने धीरे से मेरे कान मे कहा—"वह माल हाथ लगा है कि ......"

मैंने पूछा—"कितने औंस होगी?"

वह कहने लगा—"कोकीन नही। तुम्हें तो अजब कोकीन की लत पडी है। किसी दिन जेल मे चले जाओगे या नही लकवा हो जायगा। सब कोकीनबाज़ो का यही हाल होता है।"

मैंने पूछा, "फिर हाफ़ेवाल की असली शराब मँगवाई है क्या? जिसका एक बूंद गले से नीचे उतरते ही आदमी बावले कुत्ते की तरह काट खाने को दौडता है। वाह निहालसिंह, तुम ने तो सचमुच निहाल कर दिया। एक बार साले नवाये ने पिलाई थी। बस आज शाम को रहे।"

निहालसिंह अपनी मूंछो को ताव देता हुआ बोला—"नही, यह बात नही है। प्यारे, आज मेरे साथ शाम को चलना होगा; यह फिर बतलायेंगे। जरा यह छोटे साहब का ड्राफ्ट देख लो।"

शाम को हम ह्विस्की पीकर और ईवनिंग ऑफ पेरिस लगा कर चले। रास्ते मे निहालसिंह ने मोतिया के हार भी ख़रीद लिये और उन्हे गूलर के बडे पत्तो मे लपेट कर अपने कोट के बाहर की जेब मे डाल लिया। बडे बाज़ार से हम छोटे बाज़ार को घूम गये। छोटे बाज़ार से निकले तो लाल बाग के बीचो-बीच निकलते हुए ग्वालो की गली में जा पहुँचे। वहाँ चारो तरफ गोबर की दुर्गन्ध थी और गायें-भैसें डकरा रही थी। बच्चे शोर मचा रहे थे। ग्वाले अश्लील गालियाँ बक रहे थे; और ग्वालिने दूध दुह रही थी।

ग्वालों की गली के परे एक टूटी-फूटी मस्जिद थी और उसके आगे म्युनिसिपलिटी की लालटेन। बिजली की नहीं, मिट्टी के तेल की; जिसका काँच टूटा हुआ था और लालटेन ने बत्ती बाहर उगल दी थी। और वह काली-सी सिकुड़ी हुई बत्ती किसी मुर्दा जानवर की जीभ की तरह एक ओर को बाहर लटक रही थी। यहाँ पर एक दो-मंजिला बिल्डिङ्ग थी। पुरानी-धुरानी, जीर्ण-शीर्ण। निचले आँगन में घोड़े हिनहिना रहे थे और ताँगेवाले ताश खेल रहे थे। ऊपरी भाग में मैले पर्दे मटियाली सिरकियाँ और टाट के बोरे लटके हुए थे। निचली मंज़िल से ऊपर की मंज़िल को जाने के लिए एक लकड़ी का अत्यन्त पुराना ज़ीना था जो पैर रखते ही चीखने-चिल्लाने लगता था। लेकिन हमने परवाह न की और ऊपर चढ़ते गये।...... ज़ीने पर चढ़ कर निहालसिंह दायें हाथ एक अँधेरे दालान की तरफ़ मुड़ा। उसके अन्त में एक कोठरी थी। और अँधेरा ऐसा था कि दरवाज़ा भी साफ़ तौर पर नज़र न आता था। निहालसिंह ने दरवाज़ा खटखटाया; दरवाज़ा खुला और फिर बन्द हो गया।

मैं बाहर अकेला था।

एक अर्से के बाद जो मुझे निश्चित रूप से बहुत लम्बा मालुम हुआ और उस समय के अन्तर्गत क़त्ल व हत्या, पिस्तौल और छुरे, अख़बारों के शीर्षक और बड़े साहब का चेहरा, माताजी का आश्चर्य और पिताजी की जूतियाँ तथा और बहुत-सी भयानक बातें मेरे मस्तिष्क में घूम गईं। मेरा जी चाहा कि मैं इसी वक्त इसी ज़ीने से वापस चला जाऊँ। इतने में दरवाज़ा खुला और निहालसिंह बोला—अपनी भाभी से मिलो।

मैं भाभी से मिलता रहा। इसमें सन्देह नहीं कि वह बहुत ही सुन्दर तरहदार, लेकिन भयंकर सीमा तक मनोवृति वाली थी। अगर निहालसिंह किसी दिन न आता तो वह रो-रो कर बुरा हाल कर लेती। उसे मरी से एक लड़का भगा कर लाया था। फिर वह एक बूढ़े स्टेशन-

मास्टर के पल्ले पड़ी, जिसके गीले, चिप-चिपाते होंठों से उसे जल्दी ही घृणा हो गई और यह वहाँ से भाग निकली। स्टेशन पर निहालसिंह ने उसे फाँस लिया। नाम था बीराँ, अजीब नाम है। सामने एक ताँगे-वाला रहता था। टाट के बोरिये के पीछे से उसकी लड़की मुझे घूरा करती ; बीराँ ने मुझे बताया कि मोटी और भद्दी हैं ; मगर जवान है ; फटी पड़ती है। "और जवानी अगर भीड़ पर आ जाये तो "

"तो क्या होता है बीराँ" ? मैंने उससे शरारतन पूछा। वह चिन्तित हो गई। उसकी भूरी पुतलियों में एक बेचैनी की चमक काँपने लगी—"कुछ नहीं !"

और फिर बीराँ ने मुझे एक गीत सुनाया ; जिसमें उसके वतन के दृश्यों का ज़िक्र था। जंगली झरनों का और उन भीषण बर्फ़ीली हवाओं का जिनकी परिधि में झीलों के भँवर नाचते हैं।

एक दिन मैं अकेला उसके यहाँ गया। उसने पूछा—"निहाल कहाँ है ?" मैं चुप हो रहा। कुछ क्षण मौनता रही। फिर वह रोने लगी। जब उसके आँसू सूख गये तो मैंने उसे बताया कि निहालसिंह अब यहाँ कभी न आयेगा। उसकी बदली एक दूसरे शहर में हो गई है अगर तुम चाहो तो मैं तुम्हें उस शहर में भिजवा सकता हूँ।

अब बीराँ रोई नहीं। उसके होंठों पर एक दुःखी मुसकराहट पैदा हुई। उसने अपने होंठ इतने जोर से अन्दर भींचे कि उनमें से रक्त निकल आया। लेकिन वह रोई नहीं। मैंने रूमाल से उसके होंठों का रक्त पोंछा और जब रक्त बन्द हुआ तो मैंने अपने होंठ उन होंठों पर रख दिये।

बहुत रात तक हम बातें करते रहे। नीचे घोड़े हिनहिना रहे थे। ताँगेवाले शराब में मतवाले हो कर गालियाँ बक रहे थे। एक ताँगे-वाला पुलिसमैन से झगड़ रहा था, जिसको उसने पूरा कमीशन अदा नहीं किया था और अब वह इस संकुचित व अँधेरी दुनिया में अपना कमीशन लेने आया था। गालियाँ, घोड़ों की लीद और शराबी अहसास !

मैंने कहा—"बीराँ, मैं अब चलता हूँ। अगर तुम चाहो तो मैं तुम्हें निहालसिंह के पास··· ···· "

उसने मेरे बूट के तस्मे खोल डाले, जुर्राबें उतार दीं और मुझे चारपाई पर बिठा दिया। फिर उसने अपने दोनों हाथों में मेरे पाँव ले लिये और उन्हें अपनी छाती से चिपटा लिया।

मैंने कहा, "बीराँ, मैं तुम्हें शताब्दियों से जानता हूँ तुम्हारी हँसी, तुम्हारी मुसकराहट, तुम्हारी निगाहों के नटखटपन से परिचित हूँ, हमेशा परिचित रहा हूँ। लेकिन कोई चीज़ मुझे कहती है।

"क्या कहती है?"

"तुम मुझ से कुछ छिपाती हो!"

"क्या?"

"अगर यह बता सकता तो तुम से पूछता ही क्यों?"

वह बोली, "जीवन में मृत्यु के पश्चात् मुझे खुशी हासिल हुई है। बस उस खुशी को अपने दिल में छिपाना चाहती हूँ और कोई बात नहीं!"

इतने में किसी ने दरवाज़ा खटखटाया। यह ताँगेवाले की लड़की थी। उसके हाथ में एक पिंजरा था। इसी बहाने मुझे देखने आई थी। मेरी ओर देखते हुए कहने लगी—

"बीराँ, देखो हम एक चिड़िया लाये हैं, देखो कितनी मनोहर चिड़िया है।"

बीराँ ने पिंजरे की तरफ़ ध्यान से देखा और फिर पिंजरा हाथ में ले लिया। एक लाल, पीले और भूरे परों वाली चिड़िया ख़ामोश बैठी दाना चुग रही थी। बड़ी भोली-भाली प्यारी चिड़िया थी।

"इसे क्या कहते हैं?" बीराँ ने पूछा।

"चिड़िया!" जवान भेड़ ने उत्तर दिया, "और क्या?" "टीहों टीहों" अचानक बीराँ जोर से चिल्लाई और गोया मेरी समझ में लाल, लेपी और भूरे रंगों वाले इन्द्र-धनुष के वातावरण में फैल गई; डूब गई।

मैंने बीरां का हाथ पकड़ लिया और काँपते हुए स्वर में पूछा, "जरिया !" उसका रंग पीला पड़ गया अधर काँपने लगे। नेत्र बन्द हो गए और वह पिंजरे पर गिर गई।

मेरी शादी होने वाली थी। मैंने अपनी शादी से दो मास पूर्व जरिया को दो सौ रुपये दिये और रेल में सवार कर दिया। "यहाँ से तू सीधी रावलपिंडी जाइयो अपने चाचा के पास; मैंने उन्हें पत्र लिख दिया है; वह तेरी सब व्यवस्था कर देंगे। तेरा विवाह अच्छी तरह हो जायगा। मैं स्वयं तेरे लिए कोई अच्छा-सा वर ढूंढूंगा। मैंने उसे धीरज देते हुए कहा।

वह गाड़ी में बैठ गई और रोने लगी।

आसपास की स्त्रियों ने पूछा—"तेरी स्त्री है ?

मैंने कहा—"हाँ !"

"मैके जा रही है ?"

"मैंने कहा—"हाँ !"

जरिया रोती रही। स्त्रियाँ मुसकराने लगीं। एक बुढ़िया बोली—"हाय ! हाय !! स्त्री का भी क्या जीवन है; माँ-बाप पराये हो जाते हैं; और पराये पुरुष पर जान देती है, हाय ! हाय !!"

गाड़ी चलने लगी; मैंने बुढ़िया से कहा—"इसका थोड़ा .... खयाल रखना।"

स्त्रियाँ मुसकराने लगीं। "हाय बेटा ! इतना क्यों घबराते हो, हम भी अकेले जा रहे हैं। इसे घर पहुँचा देंगे, चिन्ता न करो।"

जरिया ने अपना मुँह पल्लू में छिपा लिया और उसी तरह खिड़की में अपना मुँह छिपाये रोती रही। यहाँ तक की गाड़ी नजरों से अदृश्य हो गई।

मेरी बहन कुन्तल का विवाह हो चुका है। वह दो बच्चों की माँ है। मेरे तीन बच्चे हैं। मैं अब शराब, कोकीन इत्यादि किसी चीज़ का उपयोग नहीं करता। सभ्य शहरी का जीवन व्यतीत करता हूँ। दिन को

दफ़्तर जाता हूँ। शाम को सैर करने जाता हूँ। रात को छोटे बच्चे को गोद में लेकर देर तक उसे खिलाता रहता हूँ। मैं प्रसन्न हूँ, मेरी पत्नी मुझ से प्रसन्न है और मेरा परमात्मा मुझसे प्रसन्न है।

परसों मैं खुश-खुश दफ़्तर जा रहा था कि रास्ते में मुझे एक बुर्क़ा ओढ़े स्त्री ने हाथ के संकेत से रोक लिया और मुझे निकट ही एक गली में ले गई। गली में पहुँच कर उसने बुर्क़ा उतार दिया।

"जरिया, यह तुम्हारी क्या दशा हो गई ?"

वह चुप खड़ी रही।

"तुम कहाँ रहती हो ?"

उसने कोई उत्तर न दिया।

मैंने कहा, "यहाँ कोई देख लेगा, आओ बाग़ में चलें। मैं उसे लाल बाग में ले गया। जरिया ने मुझे बताया, चाचा ने उससे दो सौ रुपये छीन लिए थे और उसे घर से बाहर निकाल दिया था। वहाँ दुर्दशा-ग्रस्त भटकती रही। लेकिन उसके दिल में एक यही इच्छा थी कि वह किसी तरह लौट कर मेरे पास पहुँच जाये। वह अपने गाँव लौट जाना चाहती थी। वह निस्ससन्देह अपने माँ-बाप से, अपने सम्बन्धियों से कभी न मिलेगी, लेकिन वह अपने गाँव जाना चाहती थी। शहरों की गन्दी धरती की झूठी मुहब्बत ने उसकी आत्मा को पाँव-तले रौंद डाला था तो अब उसके पहाड़ों की निर्मल धरती ही उसे स्वच्छ और पवित्र बना सकती थी।

उसने कहा, "एक बार तू मुझे वहाँ पहुँचा दे; केवल एक बार ! फिर मैं उस हरी-भरी धरती की छाती से चिपट जाऊँगी और उस समय तक न उठूँगी; जब तक वह मेरे सारे पाप न चूस ले ; मुझे एक बार वहाँ पहुँचा दे।"

मैंने कहा, "इस समय मुझे दफ्तर जाना है; देर हो रही है, कल मैं तुझे यहीं मिलूँगा। सब व्यवस्था कर दूँगा।"

दूसरे दिन मैंने दफ़्तर से छुट्टी ले ली और घर से बाहर न

निकला। जिस दुनिया में मैं रहता था; उसका जरिया की दुनिया से कोई सम्बन्ध न था ···उस दिन के बाद जरिया भी मुझे कभी दिखाई न दी।

अब स्मरण में उसका चित्र भी बाकी नहीं। सब चित्र-रेखायें मिट चुकी हैं। हाँ, कभी-कभी पिंजरे में बन्द तिरंग चिड़ियाँ की "टीहों-टीहों" की करुणाजनक प्रतिध्वनि कानों में गूँजने लगती है। समझ में लाल, पीले और भूरे रंगों का इन्द्र-धनुष फैलता है, डूब जाता है; फैल जाता है, डूब जाता है। सोचता हूँ, यह पिंजरा किसने बनाया है ?